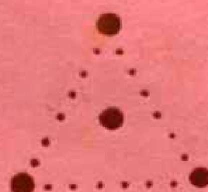
॥ श्रीः ॥

श्री अमृत-वाङ्मय-परिचायिका

अर्थात्

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र-महामहिम-आचार्य—
श्रीमद् अमृतवाग्भव प्रणीत ग्रन्थों का
परिचय



लेखक :—

डा. बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री

एम. ए. पी. एच. डी.

प्रकाशक :—

श्रीविद्या प्रकाशन

आर-पी. एस-286 मदनगिर,

नई दिल्ली-62

मूल्य : रु. 3.00

पुस्तक मिलने का स्थान :—

श्रीविद्या प्रकाशन

1. आर. पी. एस-286
मदनगीर, नई दिल्ली-62
(श्री रत्नलाल अग्रवाल)
प्रचार-मन्त्री/कोषाध्यक्ष



2. **स्टाफ क्वार्टर ए-1**
दिल्ली हाई कोर्ट, शेरशाह रोड,
नई दिल्ली-3
(श्री रत्नलाल अग्रवाल)

श्री ओ. एन महेन्द्र जी ने इस पुस्तक के मुद्रण के व्यय में सहायता प्रदान की है। एतदर्थ उन को अनेक धन्यवाद।

प्रथम संस्करण
वि. सं. 2044 (1987 ई.)
510 प्रतियां

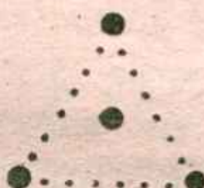
पाराशर प्रिन्टर्स
1/11849, पंचशील गार्डन
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32
फोन : 203403

॥ श्रीः ॥

श्री अमृत-वाङ्मय-परिचायिका

अर्थात्

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र-महामहिम-आचार्य—
श्रीमद् अमृतवाग्भव प्रणीत ग्रन्थों का
परिचय



लेखक :—

डा. बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री

एम. ए. पी. एच. डी.

प्रकाशक :—

श्रीविद्या प्रकाशन

आर-पी. एस-286 मदनगिर,
नई दिल्ली-62

मूल्य : रु. 3.00

सम्पादकीय

अपौरुषेय वाक्य वेद, आगम एवं तदनुकूल सच्छास्त्रीय आर्ष परम्परा प्राप्त वाङ्मय ही अभ्युदय एवं निःश्रेयस का मुख्य हेतु है। तद्विपरीत वाग्जाल 'अन्धगेलाङ् गूलन्याय' से सर्वनाश एवं पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्' का मुख्य कारण है। अतएवं आस्तिक परम्परा का उद्घोष है "यस्मिन् शास्त्रे पुराणे च हरिनाम न दृश्यते। श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्म स्वयं वदेत् ।'— अर्थात् जिस शास्त्र एवं पुराण में श्रीहरिः के मङ्गलमय नाम का दर्शन न हो उस शास्त्र (ग्रन्थ) का श्रवण नहीं करना चाहिए, भले ही स्वयमेव ब्रह्मा जी सुनावे (तब भी नहीं सुने) । उस परम्परा ने श्रवणीय साहित्य का भी स्पष्ट संकेत दिया है—"वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिस्सर्वत्र गीयते।" अर्थात् वेद में रामायण में, पुराण में तथा महाभारत में आदि-मध्य तथा अन्त में सर्वत्र श्री हरिः का गुणगान होता है। एतदर्थ यह ग्रन्थ तथा इस कोटि का अन्य सन्वाङ्म यही पठनीय, मननीय तथा विचारणीय होता है।

कलिकालप्रभाववशात् तद्विपरीत अनार्ष एवं बन्धनोन्मुख असत्सा-हित्य का प्रचलन अधिक हो रहा है। इस प्रकार के ग्रन्थों के अध्ययन से अनुशासनहीन, हिंसक, अलगाववादी प्रवृत्तियों को बल प्राप्त होता है। इन प्रावृत्तियों का समूलोन्मूलन त्याग तपस्या एवं सदाचार सम्पन्न आर्य महापुरुषों के साहित्य से ही सम्भव है। जनतन्त्र, विचारों एवं

वाणी के प्रयोग की स्वतन्त्रता के नाम पर प्रचलित अनार्ष ग्रन्थों की होड पर प्रतिबन्ध लगाना भी आवश्यक है। इस प्रकार की "कायकारतः की प्रवृत्ति सिद्धिः सुख एवं परागति में बाधक होती है। अतएव दुर्योधनी प्रवृत्ति से धर्म में प्रवृत्य भाव तथा अधर्म से निवृत्य भाव भीषण ताण्डव प्रलयङ्कारी रूप धारण किए हुए है। आधुनिक काल का अधःपतन धर्मेण "गमनमूर्ध्वगमनमधस्ताद् भवत्य धर्मेण" के सिद्धान्त से स्वतः सिद्ध है।

"स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः" इस कठोक्ति के अनुसार अविद्या जनित तमो गुण सम्वलित तथाकथित समाज सुधारक समाज प्रध्वंस के एवं विनाश कारी प्रवृत्तियों के हेतु सिद्ध हो रहे असत्साहित्य से अहर्निश धर्म, दर्शन, धर्मशास्त्र आदि के विरुद्ध निषिद्धाचरणों, संस्कृति एवं सभ्यता की हानि में प्रवृत है।

आर्ष परम्परा-परिपोषक सम्प्रदाय विद् सन्महापुरुष भगवत्प्राप्त दिव्य शक्ति के आधार पर अपनी लौहलेखिनी से प्राचीन सन्मूल्यों की रक्षा हेतु सच्छास्त्रानुकूल वाङ्मय की रचना में कटिवद्ध है। आधुनिक काल में यह बीड़ा धर्म सम्राट अनन्त श्री स्वामी करपात्री जी महाराज पं० दीना नाथ जी सारस्वत, पं० गोपीनाथ जी कविराज, महामहिम सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अनन्त श्री स्वामी अमृत वाग्भवाचार्यजी महाराज प्रभृति महापुरुषों ने उठाया था। यह महापुरुष अपनी लोक लीला-सम्वरण से पूर्व राष्ट्र एवं विश्व को अपने सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वजनीन ग्रन्थों के माध्यम से वह धरोहर दे गये हैं, जिसका मूल्य मात्र वाग्विलास से आङ्का नहीं जा सकता। इन महापुरुषों के जीवन काल में इनके द्वारा लिखित वाङ्मय का समुचित मूल्याङ्कन नहीं हो पाया। वह समय दूर नहीं जब कि भौतिकवाद एवं धर्मनिरपेक्ष (धर्मविहीन)-वाद की चका चौंध जनित विभीषिकाओं से सन्त्रस्त जनसमाज एवं जन नायक परित्राण हेतु पुनः ऐसे महापुरुषों के वैखरी-वाक्-प्रसूत साहित्य

का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करेंगे। इस साहित्य में वह शाश्वत सत्य सन्निहित हैं जो लोक एवं परलो कोपकारी हैं।

सन्त, सिद्ध, महाकवि, विद्या वागीश, शिव-शक्ति तत्त्व वेत्ता, धर्म शास्त्र विशारद महामहिम सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रादि अगणित गुणगण समलङ्कृत अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अमृत वाग्भवाचार्य जी महाराज भगवत्सा-क्षात्कार परिव्राजकाचार्य वर्य ब्रह्मीभूत शास्त्रार्थ के पण्डित एवं लेखनी के धनी थे। देवीवाक उनकी भी वाग्वश्या सी थी। दर्शन, राजनीति, धर्म शास्त्र, स्तोत्र काव्य, मुक्तक, आदि उनकी लेखनी-त्रिपथगा के विविध आयाम है। इन सब विषयों की उनकी विविध रचनओं में श्री चरणों के अगाध वैदुष्य, असाधारण काव्य प्रतिभा, पद-वाक्य-प्रमाणज्ञता का दर्शन होता है। उनके वाङ्मय का मूल मन्त्र है अधर्माभ्युत्थान एवं धर्मग्लानि-निवृत्ति पुरस्सर भग वत्तत्त्व प्राप्ति द्वारा अभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धि।

कवि के काव्यों का मूल्याङ्कन 'रस जानाति पण्डितः' के न्याय से 'सदसद्व्यक्ति हेतवः सन्तः' सज्जन समालोचक ही कर पाता है। न्याय सम्मत समालोचनार्थ कवि के हृदय में प्रवेश की क्षमता चक्रव्यूह भेदन से कम नहीं। यह कठिन कार्य प्राक्तनी एवं इदानीन्तनी वासना के अभाव में असम्भव ही है। अपनी अमृत-वाङ्मय परिचायिका' में श्रद्धेय विद्वद्वरेण्य डा० पंडित श्री बलजिन्नाथ शास्त्री, एम. ए. पी-एच. डी. ने अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अमृत वाग्भवाचार्य जी द्वारा प्रणीतग्रन्थों का दिव्य परिचय दिया है। श्री चरणों के ग्रन्थों में आदरणीय डॉ० पण्डितजी की अबाध-गति है। महाराज श्री स्वयं उनकी इस असाधारण योग्यता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किया करते थे। 'खग जांनहि खगहू की भासा' के न्याय से कवि हृदय एवं दर्शन केसरि डॉ० पण्डित जी महाराज श्री के हृदयामृतसार के असाधारण अधिकारी रसज्ञ है। अपने इस ग्रन्थ के माध्यम से डॉ० पण्डित जी ने उन मुमुक्षुओं के लिए पाथेय भूत वाङ्मय का कोमल कान्त पदावलि में हिन्दी में परिचय प्रदान किया है

जो शीघ्र ही परपद प्राप्ति के लिए प्रस्थान कर चुके हैं अथवा कर रहे हैं।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास भी है कि इस ग्रन्थ के आद्योपान्त पाठ से जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा शान्त्यर्थ अद्वितीय शमदमादि-सम्वलित श्री मदमृत-वाङ्मय में स्वाभाविक प्रवृत्ति होगी। अशरणशरण, अनाथ-नाथ, दीनानाथ, जगन्नाथ अपने आलोकभूत वाङ्मय से स्वात्म विलास भूत प्रणीमात्र का नातिचिरेण हितसम्पादन करें यही इस ग्रन्थ के सम्पादक की उनके पादपद्म में विनीत प्रार्थना है। श्री मन्नारायण से यह भी प्रार्थना है कि पूज्य प्रवर डॉ० पण्डित श्री बलजिन्नाथ जी शास्त्री को शतायु से भी अधिक आयु प्रदान करें—'शतं भूयश्च शरदः शतात्' जिससे परोपकार परवश यह महा पुरुष सन्मार्ग-प्रदर्शक बन जनकल्याण का असाधरण हेतु बने रहें। इतिशम्।

डॉ. रघुनाथ शर्मा,
एम. ए. पी. एच. डी.
रीडर संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्व विद्यालय

कार्तिक कृष्ण 6 वि० स० 2043
(अक्तूबर 24, 1986)

प्रास्ताविक

पूज्य पाद श्री आचार्य अमृत वाग्भव महोदय परिव्राजक बनने से पहले जब वाराणसी में अपने घर में रहते हुए सरस्वती भवन पुस्तकालय में शोध कार्य करने के लिए नियुक्त हुए थे तब उन्हों ने परमशिव स्तोत्र का निर्माण किया था। उससे पूर्व एक छोटी सी कविता पिक-प्रत्युक्ति को उन्होंने लिखा था।वाराणसी में वे वैद्यनाथ शास्त्री वरकेल इस नाम से प्रसिद्ध थे।

उनके अधिकांश ग्रन्थों की रचना परिव्राजक जीवन में ही हुई। उस जीवन में उन्हों ने दर्शन-विद्या, धर्मशास्त्र, स्तोत्र और नीति शास्त्र और विविध प्रकार के काव्य की रचना संस्कृत श्लोकों में की और हिन्दी में भी लेख आदि लिखे।

उनके ग्रन्थों का प्रकाशन आरम्भ में पंजाब में हुआ। तदनन्तर उन्हों ने सोलन में 'श्री स्वाध्याय सदन' नामक संस्था की स्थापना की और कई एक ग्रन्थों का प्रकाशन वहीं हुआ। उसके अनन्तर वह कार्य क्रम भरतपुर में कई वर्ष चला। वहाँ मिश्र गोविन्द शर्मा इस कार्य-क्रम में काफी सहयोग तब तक देते ही रहे जब तक उनका शरीर स्वस्थ और शक्तिशाली रहा। उनके ग्रन्थों की संस्कृत हिन्दी टीकाओं को लिखने का काम अधिकांश उनके एक कश्मीर देश वासी शिष्य डॉ. बलजिन्नाथ पण्डित ने किया।

पूज्य पाद महोदय ने और तीन संस्थाओं को स्थापित किया जो उनके ग्रन्थों के प्रकाशन का काम अब कर रही हैं :—

1. **श्री पीठ-सैद्ध दर्शन शोध संस्थान**:—इस संस्था के द्वारा पूज्यपाद जी द्वारा निर्मित "अमृत-सूक्ति पञ्चाशिका" संस्कृत टीका का तथा "मन्दाक्रान्ता स्तोत्र" के हिन्दी अनुवाद का निर्माण कर के दोनों को प्रकाशन योग्य बना दिया गया। उन दो पुस्तकों का मुद्रण क्रम से पूर्ण और दिल्ली में हुआ। श्री पीठ के द्वारा निम्नलिखित ग्रन्थों का सम्पादन, व्याख्या, प्रकाशन आदि सारा काम स्वयं किया गया।

(1) श्री आत्म विलास, सुन्दरी सहित, सन् 1982 में।

(2) श्रीगुरुवर स्तवः सानुवाद सन् 1983 में।

(3) सिद्ध महा रहस्यम् हिन्दी टीका सहित सन् 1983 में।

(4) देशिक दर्शनम् हिन्दी अनुवाद सहित, सन् 1983 में।

(5) परमशिव स्तोत्रम् हिन्दी टीका सहित, सन् 1984 में।

(6) वस्तुस्थिति प्रकाश टिप्पणी सहित, 1984 में।

(7) महानुभव शक्ति स्तव की अभिनव हिन्दी टीका सन् 1986

2—**विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान, दिल्ली**

यह संस्था पूज्य पाद जी के निर्माण दिवस को प्रतिवर्ष समारोह के साथ मनाती है। इस संस्था ने निम्न लिखित ग्रन्थों का प्रकाशन किया।

(1) त्रिगुणेश्वर शिव स्तोत्र, मूलमात्र का दूसरा संस्करण, सन् 1983 में।

(2) श्री अमृत स्तोत्र संग्रह सानुवाद, सन् 1984 में।

3. **श्रीविद्या प्रकाशन** : अब प्रकाशन कार्य के संचालन हेतु श्री विद्या प्रकाशन नाम से एक पृथक संस्था अस्तित्व में आई है जिस के द्वारा यह परिचायिका प्रकाशित की जा रही है।

4. **श्रीमदमृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध संस्थान, जयपुर**।

यह संस्था भी पूज्य पाद जी का निर्माण दिवस समारोह के साथ मनाती है। इस संस्थान ने निम्नलिखित ग्रन्थों का प्रकाशन किया।

(1) परमपूज्य श्री बाबा महाराज, सन् 1983 में।

(2) आचार्य श्री अमृतवाग्भव-दर्शन सन् 1984 में।

(4) **श्रीमदमृतवाग्भाव चार्य स्मृति ग्रन्थ** सन् 1985 में

पूज्यपाद जी के वाङ्मय से सम्बद्ध निम्नलिखित ग्रन्थों के प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है—

(1) राष्ट्र सञ्जीवन संस्कृत भाष्य। इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद भी लिखा जाना और प्रकाशित किया जाना चाहिए।

(2) आत्म विलास पर श्री पीठ में निर्मित विमर्शिनी नामक संस्कृत भाष्य।

(3) सिद्ध महा रहस्य पर निर्मित ऐसा ही भाष्य।

फिर श्री आत्म विलास पर एक सरल हिन्दी टीका के निर्माण और प्रकाशन की भी आवश्यकता है। पूज्य पाद जी ही जानते है कि इन कार्यों को करने का सौभाग्य किसे मिलेगा।

(5) एतदतिरिक्त पूज्य पाद जी के द्वारा विरचित "वरकववंश वृत्तम्" नामक प्रबन्धकाव्य के सानुवाद सम्पादन और प्रकाशन का कार्य भी अत्यन्त वान्छनीय है।

रत्नलाल अग्रवाल

एम. ए. एल. एल. बी.

प्रचार मन्त्री

॥ श्री ॥

सिद्ध महामंत्रस्वरूपिणी

॥ पर शिवप्रार्थना ॥

आचार्य—श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीता

प्रभो ! शम्भो ! दीनंविहितशरणंत्वच्चरणयो-
र्भवारण्यादस्माद्विषमविषयाशीविषवृतात् ॥
समुद्धृत्य श्रद्धाविधुरमपि बद्धादरकरं
दयादृष्ट्या पश्यन्निजतनयमात्मीकुरु शिव ! ॥

अर्थ—हे सर्वशक्तिमान् ! समस्त संसार का कल्याण करने वाले कल्याण रूप शिव भगवान् ! आपके चरणों में दीन भाव से शरण आए हुए मुझको विषय रूपी भयंकर विषधर सर्पों से भरे हुए इस संसार रूपी जंगल से बाहर निकाल कर अपनी दयादृष्टि से देखते हुए अपने पुत्र को अपना आत्मीय बनाओ। यद्यपि श्रद्धा आदि का मुझे ज्ञान नहीं है, तदपि चारों ओर से भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए शरण में आया हूँ। अतः अपने इस दीन पुत्र को हे शिव ! अपने आप स्वीकार करो।

(विशेष) इस मन्त्र को सुमुहूर्त में शिवालय में जा शिवपूजन करके श्री शिवजी को गुरु मान, मंत्र ग्रहण कर तीन बार वहां पढ़ कंठस्थ कर प्रतिदिन तीन बार सोते और जागते समय पढ़ना चाहिए।

विनीत—
मिश्र गोविन्द शर्मा
चौबुर्जा, भरतपुर (राज॰)

श्री गुरुदेव



अनन्त श्री विभूषित (ब्रह्मलीन)
स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जा महाराज
(सं० १९[illegible] से [illegible])



विषय सूची

1

दर्शन-शास्त्र-ग्रंथ

1. **परम शिवस्तोत्र** (सन् 1926 ई.)—सन् 1919/20 ई. में जब पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय अभी आयु के सोलह वर्ष पूरे कर चुके थे तो अपने अध्ययन के क्रम में उनके सामने एक अतीव विकट समस्या उपस्थित हो गई जिसे वे अपने अभ्यस्त विद्या-बल से सुलझा नहीं सकते थे। उपनयन संस्कार के अवसर पर उन्हें अपने पूज्य पिताजी से श्री विद्या की दीक्षा मिली थी। तो उस उपस्थित समस्या को सुलझाने के उपाय को हाथ में लाने के निमित्त से उन्होंने अपनी इष्ट उपास्य देवी की विशेष आराधना को आरम्भ किया। इष्ट देवी के अनुग्रह से उन्हें चालीसवें दिन अर्धरात्रि और उषः काल के मध्य में अपने पूजा के कमरे में महामुनि भगवान् दुर्वासा के साक्षात् दर्शन हुए। महामुनि ने उन्हें शाम्भव योग की उत्कृष्टतर प्रक्रिया सांगोपांग सिखा दी। उसी योग के अभ्यास से एक तो उन्हें अनायास ही अध्ययन मार्ग में उपस्थित बाधा दूर हो गई और दूसरे और अभ्यास करते रहने पर सिद्धों की उत्कृष्ट परम-अद्वैतमयी दर्शन विद्या के सिद्धान्तों की साक्षात् अनुभूति भी हो गई। शैव दर्शन के छत्तीस तत्त्वों का सामान्य ज्ञान उन्हें अपने पूज्य पिताजी से पहले से ही प्राप्त हो चुका था। इस शाम्भव-

योग के अभ्यास से छत्तीसों ही तत्त्वों के वास्तविक स्वरूपों के रहस्यों की साक्षात् अनुभूति उन्हें हो गई। ऐसा होने पर सन् 1926 में उन्होंने परम शिवस्तोत्र नामक ग्रन्थ का निर्माण करके उसे काशी-पति भगवान् विश्वनाथ को अर्पण किया और उन्होंने उसे स्वीकार किया। यह ग्रन्थ उनकी प्रमुख कृतियों में से सब से पहली कृति है, परन्तु इसका प्रकाशन चिरकाल तक हुआ नहीं। अभी सन् 1984 ई. में इसको पूज्यदाद जी के द्वारा स्थापित श्रीपीठ नामक सैद्ध दर्शन शोध संस्थान ने जम्मू से प्रकाशित किया। साथ डा. बलजिन्नाथ पण्डित द्वारा निर्मित इसकी हिन्दी टीका भी प्रकाशित हो गई।

इस ग्रन्थ में शैव दर्शन की परम अद्वैतमयी दृष्टि से ही सभी छत्तीसों ही तत्त्वों को देखते हुए उन तत्त्वों के रूप में ठहरे हुए परमशिव की ही स्तुति की गई है। अत: यह ग्रन्थ एक ओर से एक स्तोत्र काव्य है और दूसरी ओर से सिद्धों की दर्शन-विद्या को प्रतिपादित करने वाला एक शास्त्र भी है। अतः इसकी गणना दोनों वर्गों में की जा सकती है।

इस ग्रन्थ से पूर्व पूज्यपाद जी के द्वारा निर्मित एक कविता भी एक काव्य संग्रह में वाराणसी में छपी थी। उसका नाम "पिकोक्ति" या "पिकसन्देश" ऐसा है। वह एक लघु काव्य है। हाँ दर्शन ग्रन्थों और स्तोत्र ग्रन्थों में से परम शिव स्तोत्र ग्रन्थ पूज्यपाद आचार्य महोदय का सबसे पहला ग्रन्थ है।

2. **आत्म विलास** (1930 ई.)—यह ग्रन्थ उत्कृष्टतर सिद्ध जनों की दर्शनविद्या का एक नवीन ढंग से प्रतिपादन करने वाला दर्शन ग्रन्थ है और आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव जी के तर्क प्रधान दर्शन ग्रन्थों में सर्वोत्तम है। इस ग्रन्थ का निर्माण सन् 1930 ई. में कश्मीर मण्डल के भीतर पाम्पुर (पद्मपुर) और शुपयन के बीच में राजमार्ग पर बसे हुए

ह्वाल नाम के ग्राम में वहाँ के एक तत्कालीन निवासी ब्राह्मण कण्ठ भट्ट के घर में हुआ। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में रचा हुआ एक कारिकाबद्ध ग्रन्थ है। सन् 1933 ई. में नालागढ़ में आचार्य महोदय ने इसकी कारिकाओं का जो विस्तृत हिन्दी व्याख्यान अपने शिष्यों को सुना दिया उसी को वहां का एक भक्त लब्भुराम लिखता गया। पश्चात् सन् 1936 में "सुन्दरी" नाम वाली उसी हिन्दी व्याख्या के समेत इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हो गया। दूसरा संस्करण पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के द्वारा संस्थापित श्रीपीठ नामक सैद्ध दर्शन शोध संस्थान की ओर से जम्मू में हुआ। इस संस्करण में कहीं-कहीं व्याख्यात्मक टिप्पणियां भी दी गई हैं। और अन्त पर एक विस्तृत परिभाषा कोष भी दिया गया है। इस कोष से आत्म विलास की कारिकाओं और सुन्दरी नाम की टीका को भी समझने में काफी सहायता मिलती है। श्री आत्म विलास पर एक संस्कृत टीका का भी निर्माण किया जा चुका है जो खूब विस्तार से लिखी गई है, परन्तु उसका प्रकाशन अभी तक नहीं किया जा सका।

श्री आत्म विलास में प्रतिपादित दर्शन सिद्धान्त भट्ट कल्लट, सोमानन्द, उत्पल देव, अभिनव गुप्त आदि प्राचीन शैव सिद्धों के दर्शन सिद्धान्तों से पर्याप्त मात्रा में मिलते जुलते हैं। हां उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन एक अभिनव शैली से नए ढंग से किया गया है। तभी तो आचार्य महोदय की दार्शनिक दृष्टि को अभिनव शैव दर्शन या Neo-Saivism कहा गया। इस ग्रन्थ के द्वारा संसार की पहेली को परिपूर्ण परमेश्वरता के सिद्धान्त के आधार पर सुलझाया गया है। उस सिद्धान्त के अनुसार सारा ही संसार और सारे का सारा बन्ध-मोक्षवैचित्र्य परमेश्वर की परमेश्वरता की बहिर्मुखी अभिव्यक्ति की लीला है। इस लीला का मूल आधार माया नाम की उपाधि नहीं है, अपि तु परमेश्वर की स्वभावभूता परमेश्वरता ही है। अपनी इस लीला का अभिनय

करते हुए परमेश्वर स्वयमेव सारे के सारे जगत् के रूप में और इस जगत की सृष्टि-संहार आदि के रूप में सभी प्राणियों के रूप में तथा उनके बन्धमोक्ष-वैचित्र्य के रूप में प्रकट होता रहता है। परमेश्वर की इस परमेश्वरी लीला को इस ग्रन्थ में उसका "विलास" ऐसा नाम दिया गया है। स्वयं परमेश्वर ही अपने इस विलास की लीला में अपने वास्तविक स्वरूप को और स्वभाव को भुला डालकर अल्पज्ञ और अल्प शक्ति जीवों के रूप में प्रकट हो जाता है। चिरकाल तक जीवभाव में ठहरते हुए संसृति के अनन्त चक्रों में घूम-घूमकर अन्ततोगत्वा शैवी साधना के अभ्यास से अपने उस वास्तविक स्वभाव को पुनः पहचान कर कृत-कृत्यता के आनन्द के चमत्कार को लूटता है। परमेश्वर होने में एक विशेष प्रकार का चमत्कार होता है। परन्तु अपने आपको परमेश्वर रूप में पहचान लेने में कोई विशेष चमत्कार होता है जो अधिक स्वाद वाला होता है। तो परमेश्वर अपने स्वभाव भूत विलास की लीला का अभिनय करता हुआ अपने वास्तविक स्वरूप और स्वभाव को खेल-खेल में भुला डालकर तदनन्तर उसे पुनः पहचानकर परमेश्वरी विलास के परिपूर्ण आनन्द के चमत्कार को अभिव्यक्त करता रहता है, यही इस संसार की सत्ता का और इसके समस्त व्यापारों का मूलभूत रहस्य है। इस रहस्य का प्रतिपादन करने वाले सिद्धों के दर्शन सिद्धान्त को इसीलिए आत्म विलास कहा गया। सैद्ध-दर्शन के इसी विलास सिद्धान्त का विस्तृत निरूपण विविध प्रकार के तर्कों की युक्तियों के द्वारा आचार्य महोदय के इस आत्म विलास नामक ग्रन्थ में विविध समस्याओं को लेकर के विविध प्रकार से किया गया है।

आत्म विलास ग्रन्थ सात प्रकरणों में बंटा हुआ है। पहले प्रकरण में परमेश्वर के विलासात्मक स्वभाव का सामान्य दिग्दर्शन कराया गया है और इस विषय में दर्शन विद्या की विशेष समस्याओं की ओर संकेत किया गया है। दूसरे प्रकरण में यह जतलाया गया है कि परमेश्वर वह

मूल तत्त्व है जिसकी महिमा से सत्ता, चित्ता और आनन्दरूपता की अभिव्यक्ति हुआ करती है। उसे सद्रूपता, चिद्रूणता और आनन्द्रूपता कन्द स्थानीय मूल तत्त्व बताया गया है। तीसरे प्रकरण में अद्वैत वेदान्तियों के विवर्त वाद को खूब आड़े हाथों लेते हुए स्वातन्त्र्यात्मक परिपूर्ण परमेश्वरता के सिद्धान्त को तर्क की युक्तियों के द्वारा ठहराया गया है। चौथे प्रकरण में उस महाविद्या स्वरूपिणी परमेश्वरता को तर्कों द्वारा सिद्ध करते हुए ठहराया गया है जिसकी विलासमयी लीला के भीतर आपेक्षिक अविद्या और आपेक्षिक विद्या इन दोनों ही की लीलामयी अभिव्यक्ति हुआ करती है। इस प्रकरण में भी तर्क की युक्तियों से कोरे विवर्त्तवाद की खूब आलोचना की गई है। पांचवे प्रकरण में परमेश्वर के उस परिपूर्ण नैर्मल्य का निरूपण किया गया है जो परमेश्वरी विलास-लीला के भीतर कहीं आपेक्षिक समलता के रूप में और कहीं आपेक्षिक निर्मलता के रूप में अभिव्यक्त होता रहता है। छठे प्रकरण में परमेश्वर को कर्तृत्व हीन ठहराने वाले विवर्त्तवाद को तर्क के बल से पूरी तरह परास्त करते हुए उसकी उस परिपूर्ण कर्तृता को प्रमाणों के आधार पर ठहराया गया है जिसकी विलासमयी लीला के ही भीतर कहीं आपेक्षिक अकर्तृता का और कहीं वैसी ही कर्तृता का आभासन होता रहता है। सातवां प्रकरण उपसंहारात्मक है। इसमें ग्रन्थ निर्माण के देश, काल, परिस्थिति आदि पर प्रकाश डाला गया है।

पूज्यपाद आचार्य महोदय के दर्शन के ग्रन्थों में केवल इसी ग्रन्थ में अधिक से अधिक तर्क की युक्तियों का प्रयोग किया गया है। इस तरह से यह उनके तर्क प्रधान ग्रन्थों में सर्वोपरि ग्रन्थ है।

3. **महानुभव शक्ति** स्तोत्र (1936 ई.)—यह एक अति लघुकाय ग्रन्थ है। एक ओर यह एक दर्शन ग्रन्थ है और दूसरी ओर से स्तोत्र-काव्य है। इसका निर्माण सन् 1936 ई. में हुआ है। इसमें परमेश्वर की पराशक्ति की स्तुति उसके पांच मुख्य स्वरूपों को ले करके की गई

है। उसके वे पांच स्वरूप परमेश्वर की पांच अन्तरंग शक्तियां कहलाती है। इन पांच शक्तियों के विमर्शात्मक अन्त: परिस्पन्दन से ही परमेश्वर सृष्टि-संहार आदि लीलाओं के प्रदर्शन में प्रवृत्त हो जाता है। इन शक्तियों के स्वरूप की अनुभूति सिद्धों के उत्कृष्टतर योग के अभ्यास से साधक को हुआ करती है। शब्दों के द्वारा इन्हें पूरी तरह से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। फिर भी पूज्यपाद आचार्य महोदय ने इस स्तोत्र में इनके स्वरूप पर कुछ स्फुट प्रकाश डाला है। तभी तो इस स्तोत्र को दर्शन ग्रन्थों में गिना गया। वस्तुत: इसमें काव्य तत्त्व की अपेक्षा दर्शन तत्त्व अधिक विद्यमान है।

पारमेश्वरी पराशक्ति के वे पांच अंतरंग स्वरूप—(1) चित्-शक्ति (2) आनन्द शक्ति (या निर्वृति शक्ति) (3) इच्छा शक्ति, (4) ज्ञान शक्ति और (5) क्रिया शक्ति कहलाते हैं। परमेश्वर स्वयमेव इस अनन्त वैचित्र्यों से परिपूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि-संहार आदि लीलाओं का अभिनय करते रहते हैं। यह उनका अपना निजी स्वभाव है। माया जैसी उपाधि ने इसे उन पर ठोंसा नहीं है। परमेश्वर अपने इस स्वभाव को बहिर्मुखतया भी अभिव्यक्त करते रहते हैं। तभी तो वे परमेश्वर हैं। यदि ऐसा न कर सकते तो वे परमेश्वर नहीं होते। इस अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि संहार आदि लीला की बहिर अभिव्यक्ति के प्रति परमेश्वर में एक अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति सदा विद्यमान रहती है। वही उनकी परमेश्वरता का अंतरंग स्वरूप है। उस परमेश्वरता के अंतरंग परिस्पन्दन के द्वारा ही परमेश्वर बाह्य सृष्टि आदि करने लगते हैं। तो बाह्य सृष्टि आदि की लीला की स्फुट अभिव्यक्ति से पहले परमेश्वर के भीतर उसकी परमेश्वरी शक्ति का जो यह परिस्पन्दन हुआ करता है उस परिस्पन्दन का विश्लेषण पांच सोपानों में सिद्ध जनों ने किया है। उस शक्ति स्पन्दन के वे पांच सोपान ही परमेश्वर की उपरोक्त पांच अंतरंग शक्तियां कहलाती हैं जिनका निरूपण स्तुति के बहाने से इस

छोटे से स्तोत्र में किया गया है।

पहला श्लोक मंग लात्मक हैं। दूसरे में चित् शक्ति का तीसरे में आनन्द शक्ति का, चौथे में इच्छा शक्ति का पांचवें में ज्ञान शक्ति का और छठे में क्रिया शक्ति का निरूपण संकेत मात्र से किया गया है। सातवें में पांचों ही रूपों में ठहरने वाली परा पारमेश्वरी शक्ति का निरूपण किया गया है। आठवां श्लोक उपसंहारात्मक है और अन्तिम श्लोक में स्तोत्र निर्माण काल को बताया गया है। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन श्री स्वाध्याय में हुआ था।

फिर संस्कृत व्याख्या और हिन्दी टीका के समेत इसका पुस्तका कार प्रकाशन भरतपुर में 1953 ई. में हुआ। इस पर एक विस्तृत हिन्दी टीका का प्रकाशन भी जल्दी ही होने वाला है।

4. **विंशति का शास्त्र** (1951 ई.)—यह ग्रन्थ भी मूलतः लघुकाय है। मंगला-चरण, उपसंहार आदि को मिलाकर केवल तेईस श्लोकों में पूरा हुआ है। इसका निर्माण भरतपुर में वहां के निवासी परम भक्त शिष्य मिश्र गोविन्द शर्मा के लिए सन् 1951 ई. में किया गया। इस ग्रन्थ की संस्कृत कारिकाएं पहले पहल श्री स्वाध्याय में प्रकाशित हुई। तदनन्तर इस पर डाक्टर बल जिन्नाथ पंडित ने विमर्शिनी नाम की एक संस्कृत टीका का निर्माण शैद्ध दर्शन के मूल सिद्धान्तों के अनुसार किया। उस टीका का नाम विमर्शिनी है। पूज्यपाद आचार्य महोदय ने देहरादून निवासी श्री रघुनाथ चन्द्र शास्त्री को यह शास्त्र स्वयं पढ़ाया। तदनुसार उन्होंने भी एक और संस्कृत टीका इस पर लिख ली जिसका नाम प्रकाशिनी रखा गया। तदन्तर भरतपुर में प्रो. रामानन्द जी तिवारी ने इस शास्त्र को टीकाओं समेत पूज्यदाद जी से पढ़कर इस पर प्रसादिनी नाम की एक टीका को हिन्दी भाषा में लिखा। मिश्र गोविन्द शर्मा ने तीनों टीकाओं के समेत इसे सन् 1959 ई. में भरतपुर से प्रकाशित

किया । यह एक ऐसा दर्शन ग्रन्थ है जिसमें सिद्धों की दर्शन विद्या के सूक्ष्मतर सिद्धान्तों का निरूपण सरल शब्दों में किया गया है। इसमें तर्क वितर्कों से आने वाली क्लिष्टता तो नहीं है, परन्तु विचार अति सूक्ष्म हैं जो गम्भीर मनन के द्वारा ही बुद्धि में स्पष्टतया बैठ सकते हैं।

इस ग्रन्थ में आरम्भ की पांच कारिकाओं में सिद्धों की दर्शन विद्या में प्रकाशित मूलतत्व के रूप और स्वभाव का निरूपण किया गया है। तदनन्तर उस मूलतत्व की विश्वमयीलीला के भीतर रमन करते हुए भी उसकी सतत निर्लिप्तता का प्रतिपादन पांच कारिकाओं द्वारा किया गया है। दसवीं और ग्यारहवीं कारिकाओं द्वारा पुन: मूलतत्व के स्वभाव की विशेषताओं का वर्णन करके बारहवीं से लेकरके अठारहवीं कारिका तक उस मूल तत्व की विश्वमयी लीला का दिग्दर्शन विविध प्रकार की नामरूपात्मक अभिव्यक्तियों को लेकरके किया गया है। इस विषय में दार्शनिक विचारणा बहुत सूक्ष्मता की ओर गई है। उन्नीसवीं कारिका के द्वारा पुन: उस मूलतत्व का ही विमर्श करके अगली कारिका के द्वारा साधक को उसके कर्तव्य की ओर प्ररेणा की गई है। इक्कीसवीं कारिका के द्वारा ग्रन्थ की महिमा का वर्णन करते हुए अगली दो कारिकाओं द्वारा उसके उहसंहार और निर्माण प्रसङ्ग आदि को कहा गया है। टीकाओं समते शास्त्र को सोच समझ कर बार-बार पढ़ा जाए तो सिद्धों की दर्शन विद्या के परम अद्वैत सिद्धान्त का रहस्य बुद्धि में स्फुटतया चमक उठ सकता है।

5. **सिद्ध महारहस्य** (1963 ई०)—यह ग्रन्थ सिद्धों की परम अद्वैत शैव दर्शन विद्या के अनेकों रहस्यमय दर्शन सिद्धान्तों पर एक नवीन और अद्भुत ढंग से प्रकाश डालता है। इस ग्रन्थ की कारिकाओं का निर्माण पूज्यपाद आचार्य महोदय समय-समय पर करते रहे। पश्चात् उन सभी कारिकाओं का संग्रह करके और समुचित क्रम में रखकर उन्हों ने सन् 1963 में भरतपुर में एक ग्रन्थ का रूप दे दिया। फिर वे घूमते-घूमते

वाराणसी गए। वहां तब शिवलोक वासी महामहोपाध्याय श्री गोपी नाथ कविराज जी सशरीर विद्यमान थे। उन्होंने जब इस ग्रन्थ की पाण्डु लिपि को पढ़ा तो अतीव प्रसन्न हो गए। उन्हीं की प्रेरणा से वहीं पर इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् 1966 में हुआ जिसका प्राक्कथन उन्हों ने स्वयं लिखा।

तदनन्तर डा. बलजिन्नाथ पण्डित ने अनन्त नाग, कश्मीर में रहते हुए इसकी दो टीकाओं का निर्माण पूज्यपाद आचार्य महोदय के ही उपदेश के अनुसार किया। उनमें से एक तो काफी विस्तृत संस्कृत व्याख्या है जिसका प्रकाशन अभी नहीं होने पाया। दूसरी एक संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या है जिसे सन् 1983 में श्री पीठ नामक सैद्ध दर्शन-शोध संस्थान ने जम्मू से प्रकाशित किया। पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय ने दोनों ही टीकाओं की पाण्डु लिपि को पढ़ा और पसन्द किया।

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में शैव सिद्धों की दर्शन विद्या के रहस्यों को अभिनव ढंग से प्रकाशित किया गया है। वैसे पूज्यपाद श्री आचार्य जी के अन्य दर्शन ग्रन्थों में भी उनकी अपनी नवीन सूझ-बूझ का तथा नवीन ढंग की प्रतिपादन शैली का काफी दिग्दर्शन होता है। परन्तु इस सिद्ध महारहस्य नामक ग्रन्थ में ऐसी बातें उस तरह से विकास को प्राप्त हो गई हैं कि उनके इन दार्शनिक विचारों को और उन विचारों को प्रकट करने की ऐसी प्रक्रिया को हमारे जैसे लोगों ने इस नवीनता के कारण उसे Neo-Saivism अर्थात् अभिनव शैव शास्त्र, ऐसा नाम दे दिया।

सिद्ध महारहस्य के प्रथम संस्करण में आह्निक विभाग नहीं किया गया है। क्योंकि यह विभाग ग्रन्थकार ने नहीं किया था। इसे टीकाकर ने अपनी बुद्धि के बल से किया और पूज्यपाद आचार्य महोदय ने उसे हर्ष पूर्वक स्वीकार किया। तदनुसार यह शास्त्र आठ आह्निकों में विभक्त हुआ है और अन्त पर टीकाकार ने एक खिल (पूरक आह्निक)

स्वयं जोड़ दिया है।

इस ग्रन्थ का प्रथम आह्निक इस ग्रन्थ का उपोद्धात है। उसमें शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय को अतीव संक्षेप से व्यक्त किया गया है। दूसरा आह्निक मंगला चरणों का आह्निक है। इसमें इष्ट-देव, गुरु वर्ग, तथा उपास्य देव वर्ग को प्रणाम करते हुए ही साथ ही साथ शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय को अति संक्षेप से बता दिया गया है।

ग्रन्थ के तीसरे आह्निक में सैद्ध-दर्शन के अनेकों मूल सिद्धान्तों पर पराद्वैत मयी दार्शनिक दृष्टि के अनुसार प्रकाश डाला गया है।मूल तत्त्व को यहां न तो शक्ति ही कहा गया है और न शक्तिमान् शिव ही। वस्तुतः मूल तत्त्व समस्त परमेश्वरी शक्तियों का एकघन स्वरूप है तथा सभी नामों और रूपों से उत्तीर्ण है। फिर शक्ति या सामर्थ्य ही उसका सारभूत तत्त्व हैं। अतः उसे ऐसा नाम दिया जाना चाहिए था जिसमें शक्ति की प्रधानता अभिव्यक्त हुई हो और जो सुनने वालों के ध्यान को नाम रूप मय प्रपंच से परे ठहरे हुए ऐसे अशरीर शुद्ध चित्तत्त्व की ओर खींच लेता हुआ किसी दिव्य महिलात्मक देवी की ओर नहीं ले जाता रहे। 'शिव' इस नाम से दिव्य सामर्थ्य रूपी अर्थ सभी को स्फुट नहीं हो जाता है। फिर 'शक्ति' यह नाम सामर्थ्य को तो जतलाता है परन्तु शुद्ध चिद्रूपता की ओर न ले जाता हुआ किसी महिलाकार देवी की ओर ले जाता है। अतः पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय ने 'सिद्ध-महारहस्य' में पर तत्त्व को बतलाने के लिए एक नवीन शब्द को घड़ लिया। वह शब्द है 'शाकः'। शक् धातु से घञ् प्रत्यय लगाने से यह शब्द बनता है और इसका तात्पर्य है "शकनं शाकः" अर्थात् परिपूर्ण सामर्थ्य। यह शब्द एक ओर से दिव्य सामर्थ्य को जतलाता है और दूसरी ओर से सुनने वाले के ध्यान को किसी महिलाशरीर धारिणी देवी की ओर नहीं ले जाता है। फिर यह शब्द पुलिङ्ग होता हुआ परमेश्वरात्मक परतत्व का बोध कराने में समर्थ है।

तृतीय आह्निक में प्रपंच के विविध आकारों की अपेक्षा से विविध दृष्टियों को लेकर के इस 'शाक' नामक मूलभूत परतत्त्व के स्वभाव का प्रतिपादन करते हुए बार-बार यहीं जतलाया गया है कि इस प्रपंच के सभी पदार्थ वग वस्तुतः "शाकरूप" ही हैं क्योंकि 'शाक' नामक पर तत्व ही अपने लीला विलास के द्वारा उन सभी पदार्थ वर्गों के रूप में प्रकट होता रहता है। वही इस प्रकार से प्रकट हो 'सकता' है। 'सकना' ही तो शक् धातु का अर्थ होता है। तो समस्त प्रकार के 'सकने' का एकघन रूप ही परतत्व है जो अकेला ही समस्त प्रपंच का बीज है,आधार है और सर्वोत्कृष्ट सार है! शैव सिद्धों की दर्शन विद्या के इस प्रकार के मूल सिद्धान्त का निरूपण ही इस आह्निक में किया गया है। उससे यह बात अनायास ही मस्तिष्क में बैठ जाती है कि प्रपंच के आभास का मूल कारण माया नाम की ब्रह्म की उपाधि नहीं है, अपितु परमेश्वर की स्वभाव भूत शाक रूपता से ही इसका आभास होता है और ऐसा होने से ही वह मूल भूत पर तत्व परमेश्वर है। यह आभासन लीला ही उसकी परमेश्वरता है।

सिद्ध महारहस्य का चौथा आह्निक अतीव स्वल्प काय है। इस में केवल अपने प्रधान गुरु और प्रधान उपास्य देवता को पुनः प्रणाम किया गया है क्योंकि उन्हीं के अनुग्रह से ग्रन्थ कार को सैद्ध दर्शन के सूक्ष्मतर सिद्धान्त अनायास ही उद्बुद्ध हो गए और उनके वास्तविक स्वरूपों का ज्ञान उनके भीतर चमक उठा। इस ग्रन्थ के पाँचवे आह्निक में 'शाक' नामक मूल तत्व के लीलात्मक वैभव का वर्णन किया गया है।

सिद्ध महारहस्य के छठे आह्निक में शैव सिद्धों में प्रचलित अनेकों योग प्रक्रियायों पर संक्षेप से प्रकाश डाला गया है। इसी आह्निक के अन्तिम श्लोकों के द्वारा उस सर्वोत्कृष्ट योग साधना का निरूपण किया गया है जिस साधना को ग्रन्थकार ने महामुनि भगवान् दुर्वासा से सीख लिया था और जिसके अभ्यास से उन्हें सैद्ध दशन का परम अद्वैत सिद्धान्त अनायास ही साक्षात् अनुभव में आ गया। इस निर्विकल्प

साधना को ही शैवदर्शन का उत्कृष्ट प्रकार का शाम्भव-उपाय कहा गया है।

उस शाम्भव योग के अभ्यास से पूज्यवाद आचार्य महोदय को कुछ एक आनुषङ्गिक फल भी प्राप्त हुए। उनमें से एक फल यह था कि उन्हें अनेकों तीर्थ स्थानों पर तीर्थ देवताओं के तथा अनेकों दिव्य दृश्यों के दर्शन होते रहे। उन दिव्य दर्शनों का वर्णन उन्होंने सिद्ध महारहस्य के सातवें आह्निक में किया गया है। इन वर्णनात्मक श्लोकों की रचना उन्हों ने समय-समय पर की थी। उन्हीं का संग्रह इस अध्याय में किया गया है।

आठवां आह्निक ग्रन्थ का उप संहारात्मक आह्निक है। उस आह्निक के अनन्तर टीका कार ने एक अतिरिक्त खिल आह्निक का निर्माण करके 'ग्रन्थ के साथ जोड़ दिया। यह ग्रन्थ का नवम आह्निक बन गया। पूज्य-पाद आचार्य जी को मानव शरीर को छोड़ने से कुछ ही महीने पूर्व अपनी उपास्य इष्ट देवी के दर्शन हुए जिसका वर्णन उन्होंने अपने स्नेही शिष्यों के सामने किया। उसी मौखिक वर्णन के आधार पर इस आह्निक का निर्माण उन्हीं की लेखन शैली के अनुसार मानो उन्हीं के शब्दों द्वारा किया गया।

2

राजनीति-शास्त्र-ग्रन्थ

भारत वर्ष के अधिकांश शास्त्रकारों की दार्शनिक दृष्टि एकांगी ही रही है। जीवन के चार प्रयोजन होते हैं और चारों ही के प्रति प्रवृत्ति जीवन का नैसर्गिक स्वभाव है। वे प्रयोजन है—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षा। हमारे दर्शनकार प्राय: अर्थ और काम की ओर जरा भर भी ध्यान नहीं देते आए। धर्म के प्रति रुची रखते तो रहे परन्तु उसे भी प्राय: गौण पक्ष की हीं ओर धकेलते रहे। वे मुख्यतया मोक्ष पर ही विशेष बल देते रहे। इस सांसारिक जीवन की ओर दृष्टि डालें तो यही दीखेगा कि अधिकांश मानव अर्थ और काम के ही पीछे पड़े हैं। मानव ही नहीं स्वर्ग लोकों में रहने वाले देव गण भी जीवन के इन्हीं दो प्रयोजनों की खोज करते हैं। यदि कोई धर्म का अनुष्ठान करता है तो प्राय: वह भी अर्थ और काम ही के प्रयोजन से ऐसा करता है। राजसूय और वाजपेय जैसे महायज्ञों का फल भी अर्थ और काम ही है। प्रत्येक जीव अपनी प्राक्तन वासनाओं से अर्थ और काम में ही स्वाभाविकतया प्रवृत्त होकर रहता है। भारतवर्ष की ओर विशेषकर हिन्दुओं की यह एक विशेषता तो अवश्य है कि हमारी कुल परम्परागत मान्यतए और प्रथाए प्रत्येक हिन्दु को जन्म काल से लेकर ही लगातर धार्मिक कृत्यों

से बान्धे रखती हैं। अत: हमारे भीतर धर्म भी जीवन का एक जीता जागता अंग अभी तक बना रहा है। परन्तु हमारे में भी कोई विरला ही महानुभाव धर्म का उपयोग मोक्ष के प्रयोजन के लिए करने वाला दीखता है। तभी तो आज से पाँच सहस्र वर्ष पहले भगवान् कृष्ण कह गए हैं—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वत:।। (भ. गी.)

अर्थात् सहस्रों मनुष्यों में प्राय: कोई एक ही मानव मोक्ष की सिद्धि के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले सिद्धों में से कोई विरला ही सिद्ध मुझे, अर्थात् आत्मदेव को वास्तविकतया जान लेता है। मनुस्मृति में भी धर्म-अर्थ और काम की प्राप्ति के उपायभूत गृहस्थ आश्रम की महिमा को स्वीकार करते हुए इस तरह से कहा गया है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में वेदों का अध्ययन न करके और गृहस्थ आश्रम में पुत्रों का उत्पादन न करके तथा विविध भोग प्रद यज्ञों का अनुष्ठान न करके सीधे ही मोक्ष को चाहने वाले द्विज का अध: पतन होता है—

अनधीत्य द्विजो वेदान् अनुत्पाद्यापि तथा सुतान्।
अनिष्ठ्ठा चैवर्यज्ञैश्चमो क्षमिच्छन् व्रजत्यधः।। (म. स्मृ 6-37)

तात्पर्य कहने का यह है कि जीवन की व्यवहारिक समस्याओं को सुलझाये बिना ही पारमार्थिक मोक्ष के प्रति किए जाने वाले यत्न प्राय: निष्फल हो जाया करते हैं। ईशावास्य उपनिषद् में जीवन के व्यवहारिक प्रयोजनों को अविद्या कहा गया है और मोक्ष प्रतिरूप पारमार्थिक प्रयोजन को विद्या कहा गया है। इन दोनों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए वहां यह भी कहा गया है कि जो मानव केवल अविद्या की उपासना करते है वे घने अन्धकार में प्रवेश कर रहे हैं। फिर जो केवल विद्या की ही उपासना में लगे रहते हैं वे उनसे भी अधिक घने अन्धकार के भीतर घुस रहे हैं।—

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।। (ई. उप. 9)

आगे वहीं यह भी कहा है कि जो साधक विद्या और अविद्या दोनों ही की उपासना करता है वह अविद्या के द्वारा सांसारिक समस्याओं को पार करके विद्या के द्वारा उस स्थिति को पा जाता है जहाँ उत्पत्ति और मृत्यु होते ही नहीं—

विद्यां चा विद्यां च यस्त द्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया मृत मश्नुते ।। (वही 11)

जीवन के विषय में ऐसी परिपूर्ण दृष्टि को अपनाते हुए पूज्यपाद आचार्य महोदय को यह सत्य अनुभाव में आया कि जीवन की व्यवहारिक समस्याओं को सुलझाये बिना पारमार्थिक स्वातन्त्र्य को अर्थात मोक्ष को प्राप्त करना प्रायः सम्भव नहीं । फिर उन्हें इस सत्य का भी साक्षात्कार हो गया कि अधिकांश जनता के जीवन की व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने के लिए राष्ट्र में न्यायानुकूल आर्य परम्पराओं की रक्षा करने वाले शासन की स्थापना की बहुत अधिक आवश्यकता है । इसके साथ ही वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आर्योचित न्याय प्रद शासन की प्रतिष्ठा एकआर्यजुष्ट राजनीति के द्वारा ही ठहराई जा सकती है । इस निष्कर्ष के अनुसार उन्हों ने आर्योचित राजनीति शास्त्र को उतना ही आवश्यक समझा जितना अवश्यक शैव सिद्धों का उत्कृष्टतर मोक्ष शास्त्र है । उनकी ऐसी परिपूर्ण दृष्टि के ही आधार पर लिखी गई उनकी शैवि दर्शन विद्या को हमारे जैसे लोगों ने अभिनव शैव शास्त्र अर्थात् Neo Saivism, ऐसा नाम दिया। इसी परिपूर्ण दृष्टि ही के आधार पर मनु ने अपनी स्मृति में राजधर्म को ही सभी धर्मों का आधारभूत आश्रय बताया । कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी इसी दृष्टि से राजनीति को सभी शास्त्रों की सफलता का मूलाधार ठहराय गया है । भगवान् कृष्ण ने भी इसी परिपूर्ण दार्शनिक दृष्टि को लेकर के अपने सारे जीवन

को राजनीति और प्रशासन के सुधार में लगाया। पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय ने भी इसी लिए आत्म विलास जैसे अत्युत्कृष्ट दर्शन शास्त्र के निर्माण के अनन्तर शीघ्र ही आर्योचत नीति शास्त्र का प्रतिपादन करने वाले श्री राष्ट्रा लोक जैसे शास्त्रों का निर्माण किया।

6. **राष्ट्रालोक** (1933 ई०) इस ग्रन्थ में शैव सिद्धों की दार्शनिक दृष्टि के अनुसार राजनीति शास्त्र पर विचार किया गया है। आत्म विलास में प्रतिपादित दार्शनिक दृष्टि के साथ इस ग्रन्थ का घना सम्बन्ध है। आत्मविलास पारमर्थिक स्वातन्त्र्य की प्रप्ति के मार्ग को जतलाता है और उस स्वातन्त्र्य का आवश्यक उपाय बनने वाले व्यवाहारिक स्वातन्त्रय का प्रतिपादन राष्ट्रालोक में किया गया है। पूज्यपाद जी प्राय:अपने ग्रन्थों के निर्माण के काल और स्थानका निर्देश ग्रन्थान्त पर करते रहे है, परन्तु राष्ट्रालोक में उन्हों ने ऐसा नहीं किया है। परन्तु ग्रन्थ के प्रास्ताविक भाग में यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका निर्माण सन् 1933 ई. में हुआ और मूल मात्र संस्कृत श्लोकों के प्रथम संस्कण का प्रकाशन 1934 ई. में हुआ। फिर हिन्दी भाषा-अनुवाद सहित इसके दूसरे संस्करण का प्रकाशन सन् 1947 ई० में हुआ। इस समय इसका तृतीय संस्करण चल रहा है जिसका प्रकाशन सन् 1948 ई० में सोलन से हुआ था। सोलन में ही पूज्य पाद जी ने इस शास्त्र पर एक बिस्तृत संस्कृत भाष्य भी लिखा जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।

राष्ट्रालोक में राष्ट्र का लक्षण, राष्ट्र दृष्टि की बिवेचना, राष्ट्रिय ज्ञान की परम आवश्यकता- आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। राष्ट्र की स्वतन्त्रता, राष्ट्रभाषा धर्मभाषा, राष्ट्रिय प्रशिक्षण, राष्ट्रिय वाङ्मय निर्माण आदि विषयों का निरूपण करके राष्ट्र-प्रशासन के विविध अंगों पर तथा राष्ट्र पोषण के विविध उपायों पर दार्शनिक दृष्टि को लेकर के प्रकाश डाला गया है। फिर राष्ट्र प्रशासन के लिए आर्योचित सत्क्रान्ति का निरुपण करते हुए दृष्ट क्रान्ति के साथ उसकी

तुलना भी की गई है। वृत्ति और भृति की तुलना करते हुए इस बात पर बल दिया है कि राष्ट्र सेवकों को वृत्ति पर ही निर्वाह करना चाहिए क्योंकि भृति पर नियुक्त लोग कभी सच्चे राष्ट्र सेवक बन नहीं सकते। शासन नियमों के निमार्ण का अधिकार किन्हें होना चाहिए, इस बात पर भी गहरा विचार किया गया है। संक्षेपत: राष्ट्र के शासन-तन्त्र के सभी प्रधान अंगों की विवेचन शैवी सिद्धों की परिपूर्ण दृष्टि को लेकर के इस ग्रन्थ में की गई है और उन सभी बातों पर विस्तृत विवेचना संस्कृत भाष्य में स्पष्ट हो जाती है।

7 **राष्ट्र सञ्जीवन भाष्य** (1936 ई०) यही वह सुविस्तृत संस्कृत भाष्य है जिसमें पूज्य पाद जी ने अपने उपरोक्त राष्ट्र लोक की विस्तृत व्याख्या की है। इस में राष्ट्र सम्बन्धी सभी विषयों पर दार्शनिक दृष्टि कोण से विचार किया गया है। इसका प्रकाशन करने का और हिन्दी में अनुवाद करने का अभी तक प्रबन्ध नहीं किया जा सका। पूज्य पाद आचार्य महोदय ने सोलन के शिव मन्दिर की धर्म शाला में श्री स्वाध्याय सदन" नामक संस्था की स्थापना की थी। वही से बारह वर्ष "श्री स्वाध्याय" नामक त्रैमासिक पत्रिका चलती रही। वही पर इस भाष्य का निर्माण सन् 1936 ई० में हुआ।

सङ्क्रान्ति पञ्चदशी (1946 ई०) यह एक भावपूर्ण खण्ड काव्य है जिसकी रचना सन् 1946 ई. में कश्मीर राज्य के मुज़फ्फराबाद नामक पत्तन में पूज्य पाद जी के द्वारा की गई। इसमें राष्ट्रालोक में प्रति पादित् आर्योचित सत् क्रान्ति का अतीव मनोहर, सुन्दर और भावपूर्ण काव्यात्मक वर्णन किया गया है। इसे पूज्य पाद जी के काव्यों में भी गिना

जा सकता है। तदनुसार यह एक Lyric कव्य है। उस आर्योचित क्रान्ति पर भगवती दुर्गा का आरोप करके तदनुसारिणी मान्यता से उसकी स्तुति इस काव्य में की गई है। राष्ट्र में किस प्रकार की क्रान्ति सर्वजन हिताय उपयोगी हो सकती है इस बात पर काव्य की सुन्दर शैली में इस छोटे से ग्रन्थ में प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थों के मूल श्लोकों का प्रथम प्रकाशन श्री स्वाध्याय में हुआ। तदनन्तर हिन्दी गद्य-पद्यात्मक अनुवाद के समेंत इसका पुस्तकाकार प्रकाशन 1970 ई० में भरत पुर से हुआ।

3

धर्म शास्त्र ग्रंथ

सप्त पदी हृदयम् (1940 ई०) ऋषियों के आदर्श के अनुसार ब्राह्म आदि आर्योंचित विवाह सप्तपदी की विधि के पूरा हो चुकने पर ही पक्के हो जाते हैं। अतः विवाह के अनुष्ठान में सप्तपदी परम्परा का बहुत बड़ा महत्त्व है। अनुष्ठान के अन्तिम कृत्य के रूप में वधू के हाथों को अहने हाथों में पकड़ कर वर उसे अग्नि के सन्मुख अपने साथ एक-एक करके सात पग चलाता है। एक एकपग पर एक-एक सूत्र का उच्चारण होता है। इस विधि को गृह्य सूत्रों में अतीव संक्षेप से कहा गया है "एक मिषे द्वे ऊर्जे" इत्यादि। कर्मकाण्ड की पद्धतियों में "विष्णुस्त्वा नयतु" यह वाक्य प्रत्येक पग के सूत्र के साथ जोड़ा गया है। परन्तु इतने से ही इस विधि का तात्पर्य पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होता है। विवाह कराने वाले योग्य पण्डित भी प्रायः इन सूत्रों से अभिव्यक्त होने वाले तात्पर्य को पूरी तरह से समझ नहीं पाते। क्योंकि इस प्रकार के कोई स्पष्ट संकेत इन सूत्रों में दिए नहीं गए हैं। विशेष करके इषे जैसे अस्पष्ट शब्दों और "ऋतुभ्यः जैसे संदिग्धार्थ शब्दों के तात्पर्य को समझ लेना उनके लिए भी कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए'पूज्य पाद श्री आचार्य महोदय ने इन सात सूत्रों के रहस्यों को खोलते हुए

सन् '1930 ई. में सप्तप दी हृदयम्' नामक शास्त्र का निर्माण सुन्दर काव्यात्मिका शैली पर रचे हुए श्लोकों में किया। हिन्दी अनुवाद सहित इसका प्रथम संस्करण 1940 ई. में ही प्रकाशित हुआ। तदनन्तर संस्कृत हिन्दी टीका और अंग्रजी अनुवाद के साथ इसका दूसरा संस्करण 1962 ई. में भरत पुर में प्रकाशित हुआ।

गह्य सूत्रों में दिए इषे ऊर्जे आदि पदों से आदर्श आर्य विवाह के प्रयोजनों को बताया गया है। इष् शब्द का अर्थ वहाँ खाद्य पेय पदार्थ अन्न आदि है। इस धातु का अर्थ होता है इच्छा। प्राणी को जन्मते ही जिस वस्तु की इच्छा सब से पहले उद्बुद्ध होता है वह है खाद्य पेय आदि अन्न। अत: वैदिक ऋषियों ने अन्न को यहां इष् कहा इषे का अर्थ है अन्न के लिए। तो सप्त पदी के प्रथम पग पर अन्न आदि का उपार्जन वर्धन, संग्रह, संरक्षण वितरण, आदि के लिए वर-वधु पररस्दर प्रतिज्ञा करते हैं। दूसरे पग पर प्रतिज्ञा का विषय है ऊर्ज बल को कहते हैं। तो सप्तपदी के दूसरे पद से परिवार के शारीरिक, मानसिक, बुद्धि सम्बन्धी समस्त बल के संवर्धन की प्रतिज्ञा अभिप्रेत है। तीसरेपद के सूत्र में 'रायस्पोषे' शब्द लगता है इसका अभिप्राय है गृहस्थी में सब प्रकार के धन धान्य आदि अर्थ का उपार्जन, वृद्धि संरक्षण उचित वितरण आदि। तो गृहस्थी की अर्थ व्यवस्था के लिए यह तीसरे पग की प्रतिज्ञा है गृहस्थ आश्रम का चौथा प्रयोजन है सब प्रकार का सुख। उस के योग क्षेम की प्रतिज्ञा सूत्र 'मायो भवाय' का प्रयोजन है। गृहस्थी का पांचवां प्रयोजन होता है घरेलु पशुसम्पत्ति का संवर्धन, विशेष करके प्रचीन युग की कृषि प्रधान समाज व्यवस्था में। उसके संर्धन की प्रतिज्ञा पाचवे पद पशुभ्य:" इस सूत्र से की जाती है। दाम्पत्य जीवन का मुख्य प्रयोजन होता है ऋतु कालिक काम सुख और सत्सन्तति की प्राप्ति। उस प्रयोजन की प्राप्ति की प्रतिज्ञाके लिए छठे पग पर 'ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु' इस वाक्य से पक्की हो जाती है। प्राय: लोग ऋतु से वसन्त आदि ऋतुओं को ले लेते है। परन्तु मनु आदि की स्मृतियों में सन्तानोत्पत्ति के

अनुकुल सोलह रात्रियों को ऋतुकाल कहा गया है। वही यहां अभिप्रेत है। आदर्श दाम्पत्य जीवन ही परिपूर्ण सख्य भाव का अर्थात् पक्की और पूरी मैत्री का श्रेष्ठ उदाहरण है। तभी तो महा भारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में कहा गया है कि

"भाया मित्र गृहे सत:"

कालिदास के रघुवंश में भी महाराज अपनी दिवंगत पत्नी के लिए विलाप करते हुए उसे अपनी सखी ऐसा कहते हैं—

गृहिणी सचिव: सखी मिथ:
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ

तो सप्तपदी के सातवे पग पर उस आदर्शभूत परिपूर्ण सख्य भाव की प्रतिज्ञा की जाती है। फिर ये सात पग क्रम से भू:, भुव:, स्व:, आदि सात भुवनों में एक साथ सङ्क्रमण करने के प्रति प्रयत्न की प्रतिज्ञा को भी अभिव्यक्त करते है। ऐसा विद्वत् परम्परा में माना जाता है।

ऋषियों के द्वारा स्थापित किए गए आदर्श हिन्दू विवाह के इन सात पारिवारिक प्रगति रूपी प्रयोजनों का, उन प्रयोजनों के अनुकूल वर-वधू की परस्पर प्रतिज्ञाओं का तथा एक साथ सात लोकों में क्रम से संक्रमण के सङ्कल्पों का अतीव स्पष्ट निरुपण 'सप्तपदी हृदयम' नामक ग्रन्थ में वर वधू के परस्पर संवाद के रूप में अतीव सुन्दर श्लोकों के द्वारा किया गया है। विवाहों के अवसर पर इस सप्तपदी हृदयम् को गाया जाना चाहिए और इसका अर्थ वर-वधू को तथा उपस्थित सम्बन्धियों, मित्रों आदि को सुना दिया जाना चाहिए। तब कही सप्तपदी की विधि का वास्तविक स्वरूप जनता की बुद्धि में बैठ सकेगा। नहीं तो सप्तपदी एक शिष्टाचार मात्र ही रह जाता है।

4

स्तोत्र काव्य

परम शिव स्तोत्र यह पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय का सब से पहला महत्वपूर्ण ग्रन्थ है इससे पहले लिखी हुई उनकी जो कृति मिल रही है वह है "पिक-प्रत्युक्ति।" उस का परिचय आगे उनके लघु काव्यों में दिया जाएगा। इन दो काव्यों का निर्माण उन्हों ने तब किया था जब वे अभी वाराणसी में अपने घर में ही रह रहे थे। शेष सभी ग्रन्थों की रचना उन्होंने अपनी परिव्राजक जीवन में ही की।

10. **पवन नन्दनाष्टकम्** (**मारुतिस्तोत्रम्**-) (1929 ई.) इस स्तोत्रका निर्माण पूज्यपाद जी ने परिव्राजक जीवन के प्रारम्भिक काल में सन् 1929 ई. में हरिद्वार में किया। यह हनुमान जी का स्तोत्र है। हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन सन् 1984 ई. में पूज्य पाद जी के द्वारा स्थापित "विद्वद् वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान" ने दिल्ली से "अमृत स्तोत्र संग्रह" में किया।

11. **परशिवाष्टकम्** (1929 ई.) आठ श्लोकों वाले इस स्तोत्र के द्वारा पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय ने उस समय की अपनी दयनीय

दशा कोभगवान् शिव को निवेदन किया । परिव्रजनके कुछ ही महीने पश्चात् इस स्तोत्र का निर्माण उन्होंने सन् 1929 में ऋषिकेश में किया । इस का प्रकाशन भी ऊपरोक्त अमृत स्तोत्र संग्रह में सन् 1984 में हुआ ।

12. **बालक माँ पाहि** (1929 ई.) यह एक अतीव लघु काय देवी स्तोत्र है जिसे गीति काव्य की शैली पर सन् 1929 में कश्मीर मण्डल में साधु गंङा तीर्थ पर रचा गया । इसे भी हिन्दी अनुवाद के साथ अमृत स्तोत्र संग्रय में 1984 में प्रकाशित किया गया ।

13. **मन्दाक्रान्ता स्तोत्रम्** (1929 ई.) यह एक अतीव मधुर और मनोहर देवी स्तोत्र है । इसमें सिद्धों की दर्शन विद्या के कई एक रहस्यों का प्रकाशन कविता के माध्यम से किया गया है । भाषा अतीव मधुर है । अलङ्कारों के प्रयोग से स्तोत्र का सौन्दर्भ काफी बढ़ गया है । भाव तो अनुपम ही है । शैव सिद्धों की साधना के कई एक रहस्यों का वर्णन कविता के माध्यम से इसमें किया गया है । देवी जगदम्बा के वाङ्मय, कामराज और शाक्त बीजों का वर्णन और उनकी उपासना के रहस्यों का प्रकाशन सुन्दर कवित्व के माध्यम से किया गया है । स्तोत्र कार की इष्ट देवी बाला त्रिपुरा का शास्त्रीय वर्णन खूब विस्तार से इसमें किया गया है । जगदम्बा के सभी अङ्गों के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन अतीव मनोहर होता हुआ एक ओर से भगवान् दुर्वासाकृत त्रिपुरा महिमस्तोत्र और ललिता स्तवरत्न की तथा शङ्कराचार्य कृत सौन्दर्य लहरी की और कालिदासकृत कुमार सम्भव की स्मृति कराता हैं । स्तोत्र में कवि ने कई एक नवीन कल्पनाओं के द्वारा देवी के अंगों के सौन्दर्य का वर्णन किया है । सूक्ष्मतर दार्शनिक तत्त्वों को कवित्वमयी कल्पनाओं के द्वारा पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट कर दिया है। भाव वैचित्र्य भी इसमें अनुपम है। स्तोत्रकार ने अपनी कवित्व शक्ति का, प्रतिभा का और कल्पना शक्ति का सर्वस्व ही मानों इसकी रचना में लगा दिया है । सौन्दर्यलहरी पन्चस्तवी, त्रिपुरामहिम स्तोत्र

ललिता स्तवरत्न आदि जैसे अत्युत्तम शक्ति स्तोत्रों के साथ इस स्तोत्र की गणना की जा सकती है। यह काव्य स्तोत्र पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के काव्यों में सर्वश्रेष्ठ काव्य है।

इस अत्युत्तम स्तोत्र काव्य का निर्माण उन्होंने कश्मीर मण्डल में बारामुला नामक कस्बे में भगवती शैलपुत्री के तीर्थ पर सन् 1929 ई. में किया था। चिरकाल तक इसका प्रकाशन नहीं हुआ। सन् 1973 ई. में पूज्यदाद जी के आदेश से उनके शिष्य डा. बलजिन्नाथ पंडित ने शिमला में इसका अनुवाद हिन्दी भाषा में किया। उसी अनुवाद के समेत दिल्ली में श्री रवि शर्मा त्रिवेदी ने सन् 1979 ई. में इसका प्रकाशन श्रीपीठकी ओर से किया। तदनन्तर जोधपुर निवासी श्री रमानन्द शास्त्री ने उसी अनुवाद के आधार पर इसकी एक विस्तृत हिन्दी टीका का निर्माण करके उसे सन् 1980 ई. में पुनः प्रकाशित किया। कवित्व की दृष्टि से शैव सिद्धों की दार्शनिक दृष्टि से तथा शाक्त साधना की दृष्टि से यह ग्रन्थ एक बहुत उत्तम और अतीव मनोहर स्तोत्र काव्य है।

14. **महागुरु श्री कृष्ण स्तोत्र** (1930 ई.)—इस स्तोत में कविवर ने एकसाथ ही भगवान् श्रीकृष्णकी औरअपने पूज्य पिता श्रीकृष्ण शास्त्री वरकलेकी स्तुति की है। यह स्तोत्र भी बहुत सुन्दर है। अर्थश्लेष के होते हुएभी इसके प्रसाद गुण में कोई त्रुटि नहीं आने पाई है। इस स्तोत्र का निर्माण उन्होंने सन् 1930 में कश्मीर मण्डल के अनन्तनाग जिले में का कोर्ट नाग नामक तीर्थ पर क्रिया था। इसका प्रकाशन उपरोक्त अमृत-स्तोत्र-संग्रह में 1984 में हुआ। साथ हिन्दी अनुवाद भी है।

15. **बालकृष्ण दशकम्** (1930 ई.)—इस स्तोत्र का निर्माण कश्मीर मण्डल के अनन्त नाग जिले में स्थित ब्राह नामक गांव में 1930 ई. में हुआ। द्रुत विलम्बित छन्द में रचित यह स्तोत्र अतीव श्रुति मधुर है। इसका सानुवाद प्रकाशन भी उपरोक्त अमृतस्तोत्र संग्रह में 1984 ई. में दिल्ली में हुआ।

16. **रामाश्व घाटी स्तव:** (1931 ई.)—यह एक समस्या पूर्तिमय स्वल्पकाय श्रीराम चन्द्रस्तोत्र है। इसका निर्माण कविवर ने सन् 1931 ई. में कांगड़ा मण्डल में स्थित शेराठान नामक गांव में किया था। हिन्दी अनुवाद सहित इसका प्रकाशन भी उपरोक्त अमृतस्तोत्र संग्रह में 1984 ई. में दिल्ली में हुआ।

17. **परशुराम स्तोत्रम्** (1932 ई.)—यह भी एक अतीव सुन्दर और उत्तम स्तोत्र है। इसमें साथ अनुष्ठान विधि भी दी हुई है। इसका अनुष्ठान कई एक स्थानों पर हुआ। युद्ध, संघर्ष, मुकद्दमा आदि में साफल्य इसके अनुष्ठान का फल है। सन् 1932 ई. में कश्मीर मण्डल में मार्तण्ड तीर्थ (मट्टन) पर स्तोत्र का निर्माण हुआ। वहां पूज्यपाद जी की प्रेरणा से इसके पुरश्चरण का अनुष्ठान भी किया गया। उसका शुभ फल यह निकला कि जब आगे कुछ ही महीनों के पश्चात् इस तीर्थ पर अपना अधिकार जमाने के लिए विधर्मियों के द्वारा आक्रमण और आन्दोलन किए गए तो वे सब निष्फल हो गए और अभी तक इस तीर्थ पर सनातनी ब्राह्मणों का अधिकार बना है।

इस स्तोत्र के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् 1934 ई. में हुआ। तदनन्तर सन् 1940 ई. में सोलन से इसका सानुवाद द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। तृतीय संस्करण का प्रकाशन सन् 1957 ई. में दिल्ली से हुआ।

भगवान् परशुराम शैवी सिद्धों की दर्शन विद्या का अभ्यास करने वाले तथा भारतीय आर्य नीति का प्रचार करने वाले भारत के अति प्राचीन नि:स्वार्थ और तपस्वी नेता हैं। फिर भी उनकी उपासना का प्रचार कहीं मिलता ही नहीं। उस अभाव की पूर्ति पूज्यपाद जी के इस परशुराम स्तोत्र से हो रही है।

18. **'प्रभोशम्भो' प्रार्थना** (1933 ई.) यह केवल एक ही श्लोक

है जिसकी रचना पूज्यपाद जी ने नालागढ़ की धर्मसभा के भवन में रहते हुए सन् 1933 ई. में की थी। श्लोक की रचना करके उन्हें ऐसा विचार हुआ कि श्लोक में एक समस्त पद अशुद्ध है। अतः इसमें शब्द रचना को जरा बदल देने का संकल्प उन्होंने किया। परन्तु उसी दिन सायंकाल को एक विचित्र घटना इस सम्बन्ध में घटी। किसी दिव्य महापुरुष ने भवन में प्रकट होकर गरजते हुए कहा कि यह श्लोक सर्वथा शुद्ध है, इसके शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही उस महापुरुष ने अकाट्य वैयाकरण उपपत्ति देते हुए पूज्यपाद जी की शंका को भी दूर कर दिया। तदनन्तर वे महापुरुष अदृश्य हो गए। ऐसा होने पर पूज्यपाद महोदय को निश्चय हो गया कि यह श्लोक एक साधारण श्लोक न होता हुआ एक सिद्ध मन्त्र है जिसकी रचना किसी दैवी शक्ति ने उनकी वाणी और लेखनी के द्वारा करवा दी है।

इस प्रार्थना का प्रथम प्रकाशन कल्याण के किसी अंक में हुआ था। दूसरा प्रकाशन श्रीनगर से सन् 1942 के लगभग हुआ। तीसरा प्रकाशन भरतपुर से और चौथा दिल्ली से हुआ। पाचवां प्रकाशन एक पुस्तिका के आकार में भरतपुर से सन् 1974 में हुआ। इस प्रकाशन में उपरोक्त घटना का भी वर्णन श्लोकों में किया गया है। श्री स्वाध्याय में भी इसका प्रकाशन हो चुका है। पूज्यपाद श्री जी की कई एक पुस्तकों में भी यह श्लोक प्रकाशित हुआ है।

महानुभव शक्ति स्तोत्र—इस स्तोत्र का परिचय पीछे दर्शन ग्रन्थों के प्रकरण में दिया जा चुका हैं।

19. **अवधूताभिवादनम्** (1953 ई.)—इस लघुकाय स्तोत्र में अवधूतों का गुणगान किया गया है। इसका निर्माण सन् 1953 ई. में हुआ। और प्रकाशन पूर्वोक्त अमृत स्तोत्र संग्रह में दिल्ली से हुआ।

20. **त्रिगुणेश्वर स्तोत्रम्** (1966 ई.)—निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन

(दिल्ली) के पास कालेखां नामक स्थान पर निर्मित शिव मन्दिर में शिवलिंग की स्थापना के अवसर पर इस स्तोत्र का निर्माण पूज्यपादजी ने सन् 1966 ई. में किया और उसी समय इसका प्रकाशन भी हुआ। इसके द्वितीय संस्करण को पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के द्वारा स्थापित "विद्वद् वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान" के द्वारा दिल्ली में सन् 1983 ई. में हुआ। इसके तीसरे संस्करण का प्रकाशन पूर्वोक्त अमृतस्तोत्र संग्रह में 1984 में ई. में हुआ। इससंस्करण में साथ हिन्दी अनुवाद भी है। पहले दो संस्करण में मूलमात्र संस्कृत श्लोक ही छपे हैं।

21. **आपूपिकेश्वर स्तोत्रम्** (1966 ई.)—भरतपुर में हलवाइयों ने एक शिव मन्दिर का निर्माण जब सन् 1966 ई. में किया तो वहां शिवलिंग की स्थापना के अवसर पर पूज्यपाद जी ने एक लघु काय स्तोत्र की रचना की जिसे पूर्वोक्त अमृत स्तोत्र संग्रह में 1984 में प्रकाशित किया गया।

22. **देवी स्तोत्रम्**—इस स्तोत्र में रचना के देशकाल का कोई निर्देश नहीं किया गया है। इसका प्रकाशन जयपुर से पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के द्वारा स्थापित संस्थान ने 1984 में प्रकाशित "आचार्य श्री अमृत वाग्भवः दर्शन स्मारिका" नामक ग्रन्थ में किया। वियोगिनी छन्द में रचा हुआ यह स्तोत्र भी अति सुन्दर और मनोहर है।

23. **स्वाध्यायमहिम स्तोत्रम्** (1957 ई.)—पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय श्री स्वाध्याय के प्रत्येक अंक के लिए स्वाध्याय की प्रशंसा में कम से कम एक-एक श्लोक लिखकर भेजा करते थे। उन्ही श्लोकों में से उन्होंने सन् 1957 ई. में शिखरिणी छन्द में रचे हुए इक्कीस श्लोकों का और एक शार्दूल विक्रीड़ित पद्य का संग्रह करके उसे "स्वाध्याय महिम स्तोत्र" नाम दिया। सन् 1962 ई. में उन श्लोकों का पद्यानुवाद जोध-

पुर निवासी श्री रमानन्द शास्त्री ने किया। वे उसे प्रकाशित करने की सोच ही रहे थे कि असमय में उनका शरीर छूट गया। तदनन्तर इस स्तोत्र का प्रकाशन अभी तक किसी ने नहीं किया।

अमृत स्तोत्र संग्रह (1984 ई.)—पूज्यपाद आचार्य महोदय ने सन् 1982 में अपने माता पिता के नाम पर दिल्ली में एक संस्था की स्थापना की जिसका नाम उन्होंने "विद्वद् वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान" रखा। संस्थान के प्रचार मन्त्री श्री रत्नलाल अग्रवाल ने सन् 1984 के आरम्भ में पूज्यपाद जी द्वारा निर्मिन उन स्तोत्रों का एक संग्रह तैयार किया जो पुस्तकाकार में प्रकाशित नहीं हुए थे। डा. बल जिन्नाथ पंडित ने उन स्तोत्रों का अनुवाद हिन्दी में किया दिल्ली वाले संस्थान ने उसे सन् 1984 में प्रकाशित किया। इस संग्रह में प्रकाशित स्तोत्रों का परिचय पीछे दिया ही जा चुका है। इस संग्रह में निम्नलिखित स्तोत्र प्रकाशित हुए हैं—

(1) पवननन्दनाष्टकम्।
(2) श्री परशिवाष्टकम्।
(3) बालकं मां पाहि।
(4) महागुरु श्री कृष्ण स्तोत्रम्।
(5) श्री बालकृष्ण दशकम्।
(6) श्री रामाश्वघाटी चतुष्टयम्।
(7) अवधूताभिवादनम्।
(8) श्री त्रिगुणेश्वर शिवस्तोत्रम्।
(9) आपूपिकेश्वर स्तोत्रम्।

5

मुक्तक काव्य

24. **अमृत सूक्तिपञ्चाशिका** (1953 ई.)—पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय श्री स्वाध्याय पत्रिका के प्रत्येक अंक के लिए सामयिक विषयों घटनाओं, परिस्थितियों आदि को लेकर के अथवा धर्म, अर्थ, मोक्ष तथा सज्जनता, दुर्जनता, पाप, पुण्य आदि और उपास्य देवताओं आदि के विषय में त्यौहारों या ऋतुओं के विषय में समय-समय पर अतीव सुन्दर सूक्तियों का निर्माण किया करते थे। ऐसी सूक्तियां प्राय: 'निवेदन' इस शीर्षक से उस पत्रिका में लगातार प्रकाशित होती रहीं। सन् 1953 ई. में उन्होंने उन सूक्तियों में से शिखरिणी छन्द में निर्मित पच्चास सूक्तियों का संकलन करके उसे उपरोक्त नाम दे दिया। सन् 1953 ई. में ही डा. बल जिन्नाथ पंडित कृत संस्कृत टीका के समेत उसका प्रकाशन पूज्यपाद जी के द्वारा स्थापित श्री पीठ नाम की संस्था की ओर से हुआ। सम्पादन मुद्रण और वितरण पुणें में हुआ।

इस काव्य की भाषा प्रसाद गुण से विभूषित है और भाव अतीव रोचक हैं। स्वतन्त्र भारत के शासकों और नेताओं की कई एक अनार्य नीतियों पर आलोचनात्मक श्लोक अतीव सुन्दर हैं। काले हृदय और

शरीरों को श्वेत वस्त्रों से ढांपने वाले राजनयिकों की तथा चुनावों में चलती हुई दूषित पद्धतियों की आलोचना तो हृदयस्पर्शिनी है। सदसद्विवेक पर तथा पारमेश्वरी लीला पर रची हुई सूक्तियां अतीव मनोहर हैं। सारा संग्रह ही उत्तम काव्य में गिने जाने के योग्य है।

सूक्ति लहरी—इस शीर्षक वाला एक और सूक्ति संग्रह पज्यपाद जी ने सन् 1956 में तैयार किया था। ऐसा उनकी लिखी ग्रन्थ सूची से विदित होता है। परन्तु वह संग्रह उनकी पुस्तकों और अन्य कागजों में अभी तक कहीं भी नहीं मिला। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि श्री स्वाध्याय में जो उनकी अनेकों सूक्तियां समय-समय 'निवेदन' इस शीर्षक से प्रकाशित होती रही उन्ही में से एक और संग्रह का संकलन उन्होंने इस नाम से किया होगा।

6

वर्णनात्मक काव्य

25. **दैशिक दर्शनम्** (1962 ई.)—इस काव्य का निर्माण पूज्यवाद जी ने कश्मीर मण्डल में कुलगाम नाम के कस्बे में सन् 1962 ई. में किया। उनकी आयु के सोलह वर्ष पूरे होने के पश्चात् वाराणसी में उन्हें अपने घर में ही भगवान् दुर्वासा ने जो साक्षात् दर्शन दिये तदनुसार ही उन्होंने इस लघुकाय काव्य की रचना की। इसमें उन्होंने महामुनि दुर्वासा के शरीर का अंगों का वेशभूषा का और प्रकट होते हुए मनोभाव का वर्णन किया है। हिन्दी अनुवाद सहित इस काव्य का प्रकाशन सन् 1983 ई. में सटीक सिद्ध महा रहस्य के साथ ही हुआ। दोनों ग्रन्थ एक ही जिल्द में बन्धे हैं। दोनों ही का प्रकाशन जम्मू से श्री पीठ नाम के शैद्ध दर्शन शोध संस्थान ने किया।

26. **संजीवनी दर्शनम्** (1962 ई.)—यह एक अतीव सुन्दर काव्य है जिसमें प्राकृतिक दृश्यों का अतीव मनोहर वर्णन किया गया है। पूज्यपाद श्री जी सन् 1931 में कुल्लू घाटी में मणिकर्ण तीर्थ की यात्रा को गए। मार्ग में जैसे-जैसे प्राकृतिक दृश्य उनके सामने आते गए उनका शब्दात्मक चित्रण उन्होंने पश्चात् इस काव्य में अति सुन्दर ढंग से किया।

विशेष करके पार्वती नदी का पार्वती और व्यास के संगम का पर्वत मालाओं का मणिकर्ण तीर्थ का उसके उबलते हुए जल का इत्यादि।

वे तीन दिन मणिकर्ण तीर्थ पर रहे। चौथे दिन उन्हें वहां मलेरिया ज्वर का आक्रमण हुआ। पहले तो बीच में एक दिन छोड़कर तीसरे दिन ज्वर चढ़ता रहा, पश्चात् बीच में दो दिन छोड़कर चौथे दिन चढ़ने लगा। फिर वे वहां से मन्द-मन्द गति से वापिस मुड़कर तीन दिन में भुवन्तर पहुच गए। वहां से सुलतानपुर आ गए। उधर श्मशान भूमि के निकट एक धर्मशाला थी जिसमें उन्होंने रात भर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रभात काल से ही ऐसा भयानक ज्वर चढ़ गया कि उन्हें ऐसी शंका होने लगी कि अब शरीर छूटने वाला है। ऐसी स्थिति में उन्हें एक दिव्य दृश्य दीखा। दक्षिण की ओर से तीन देवता उनके पास आकर खड़े हो गए। उनके शरीर अतीव सुन्दर थे और वेशभूषा भी देवताओं की जैसी थी। हाथों में छोटी-छोटी बांस की ग्रन्थिहीन यष्टियां थीं। साथ ही उत्तर की ओर से एक त्रिशूलधारी शैव सिद्ध प्रकट हो गये। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा परन्तु कुछ वार्तालाप नहीं किया। त्रिशूलधारी सिद्ध ने पूज्यपाद जी को अपने कमण्डल से अमृत तुल्य जल पिलाकर मृत्यु को जीतने वाली त्रैयम्बक विद्या के मन्त्र की दीक्षा दे दी। पूज्यपाद जी लेटे-लेटे ही मन्त्र का जाप करते रहे। सारा दिन इसी स्थिति में बीत गया। सायंकाल होने वाला ही था कि दोनों ही पक्षों के देवता अपनी-अपनी दिशा में पीछे सरकते हुए धीरे-धीरे अदृश्य हो गए। तब पूज्य-पाद जी को ऐसा प्रतीत हुआ कि मारक ज्वर ने उन्हें छोड़ दिया है और वे स्वस्थ होने लगे हैं। इस प्रकार के दिव्य दर्शन का और त्रैयम्बक मन्त्र दीक्षा का वर्णन करने के लिए इस काव्य की रचना की गई।

इस काव्य का निर्माण उपरोक्त कुलगाम नामक पत्तन में सन् 1962 ई. में हुआ और हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन सन् 1963 ई. में भरतपुर में हुआ।

27. **सिद्ध मानव दर्शनम्** (1963 ई.)—सन् 1930 में श्रीनगर में शारिका पर्वत पर स्थित देवी के मन्दिर के आंगन में पूज्यपाद आचार्य महोदय को एक ऐसे सिद्ध मानव से भेंट हुई जो आदातत: इसी लोक का प्राणी प्रतीत होता था और वेशभूषा से तथा भाषण से कश्मीरी पंडित मालूम पड़ता था। पं चस्तवी के "माया कुण्डलिनी" श्लोक के विषय में उनसे संवाद हुआ। जो व्याख्या पूज्यपाद जी ने इस श्लोक की की उससे वह सिद्ध मानव भली भान्ति सन्तुष्ट नहीं हुए और इस श्लोक का सूक्ष्मतर रहस्य बता देने के लिए पूज्यपाद जी को नगर के पुराने भाग में एक गली में ले जाकर एक मकान उन्हें दिखा दिया और कहा कि आप कल यहां आइए और मुझे "शिवजी" नाम से पुकारिए तो मैं यहीं आपको इस श्लोक का रहस्यार्थ समझा दूंगा।

दूसरे दिन पूज्यपाद जी नियत समय पर वहां गए और शिव जी ने ऊपर बुलाकर उन्हें दूध पिलाकर सावधान होकर उनकी ओर एकटक दृष्टि से देखा। इस तरह से दृष्टि के द्वारा एक प्रकार की वेधदीक्षा करते हुए उन्हें ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया कि उन्हें माया कुण्डलिनी पद्य के रहस्यार्थ कीं अनुभूत्ति स्वयमेव होने लगी।

दो चार दिन के अनन्तर पूज्यपाद जी शिवजी से पुन: मिलने को जब आए तो उस घर से किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। पड़ोसियों से उन्हें विदित हुआ कि इस घर में बारह वर्ष से कोई भी रहता नहीं। मुख्य द्वार का ताला खोलकर उन्हें दिखाया गया कि घर की सभी छतों के सभी कमरों में ताले लगे हैं। अब शिवजी को ढूंढें तो कहां ढूंढें।

यह घटना सन् 1930 में घटी। इसका वर्णन पूज्यपाद जी ने सन 1963 में दिल्ली में श्लोक बद्ध किया। सन् 1978 ई. में इसे श्री लाल बहादुर शास्त्री विद्यापीठ की पत्रिका 'शोधप्रभा' में प्रकाशित किया गया।

7

प्रबन्ध काव्य

28. **वरकल वंशवृत्तम्** (1936 ई.)—पूज्यपाद आचार्य महोदय जन्म से महाराष्ट्री ब्राह्मण थे उनके वंश का मराठी नाम "वरकले" है। उन्होंने सन् 1930 ई. में अपने पूर्वजों का एक विस्तृत इतिहास "वरकल वंशवृत्तम्" इस शीर्षक से लिखा। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। एक बड़ा विस्तृत ग्रन्थ है जिसे अधिकांश में अनुष्टुप छन्द में लिखा गया है। इसमें कुछ अति प्राचीन विद्वानों का इतिवृत्त लिखा है। पिछली और वर्तमान दो शताब्दियों के अनेकों संस्कृत विद्वानों के जीवन चरित पर इससे काफी प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ के साथ कई एक परिशिष्ट भी जुड़े हुए हैं। उनसे पूज्यपाद जी के निकट सम्बन्धियों, मित्रों, अध्यापकों और गुरुओं का परिचय मिलता है। अपने वंश के अनेकों प्राचीन पूर्वजों का इतिहास भी इसमें लिखा गया है। उसे उन्होंने श्रुति-परम्परा से ही सुना था।

8

लघुकाव्य

29. **पिकप्रत्युक्ति**—सन् 1928 ई. से कुछ वर्ष पहले जब पूज्यपाद जी अभी एक विद्यार्थी ही थे तब वाराणसी में संस्कृत विद्वानों ने एक कवि गोष्ठी का आयोजन किया था। उस गोष्ठी में सुनाई गई कविताओं को एक पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित किया गया था। पूज्यपाद जी ने भी उस गोष्ठी में एक कविता सुनाई थी। यद्यपि उस पुस्तिका में केवल बड़े-बड़े विद्वानों की ही कविताओं का प्रकाशन हुआ परन्तु एक अतीव मेधावी और सुयोग्य छात्र होने के कारण से पूज्यपाद जी की कविता को भी उसमें स्थान मिल गया। उनकी वह कविता कोकिल दम्पति के परस्पर संवाद पर लिखी गई है। उसका शीर्षक "पिक सन्देश" या पिक-प्रत्युक्ति है। उसे मैंने एक बार वाराणसी में देखा था। यह कविता संभवत: उनकी उपलब्ध कृतियों में सबसे पुरानी कृति है।

30. **चारुसन्देश** (1944 ई०)—यह एक छोटी सी कविता है। जिसका निर्माण पूज्यपाद जी ने सन् 1944 में लायलपुर (पश्चिमी-पंजाब) में किगा था। वाराणसी में रहते हुए उनका विवाह भी हुआ था। परन्तु जगदम्बा की कृपा से स्थितियां ऐसी बन गई की पत्नी के

द्विरागमन रसम से पूर्व ही, अर्थात् वर वधू के वास्तविक समागम हुए बिना ही उन्हें घर छोड़ कर परिव्राजक बनना पड़ा। इस चारूसन्देश को उन्होंने अपनी पत्नी के लिए लिख कर अनुवाद सहित उसे भेज दिया। इसमें परिस्थितियों के अनुसार कल्याण के मार्ग पर चलने का और योगविधि का सदुपदेश लिखा गया है। सुना है कि उस सदुपदेश पर चलने से उस देवी की भी अध्यात्मिक क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई। उसे उन्होंने वृन्दावन बुलाकर योग प्रक्रिया समझा भी दी थी ऐसा उनके उधर के शिष्यों का कहना है।

31. **कृतघ्न मित्रं प्रति पत्रम्** (1948 ई०) एक महानुभाव ने परम मित्र होते हुए भी एक ऐसा काम किया जिसे पूज्यपाद जी ने महान विश्वासघात समझा। सन् 1948 ई० में उन्होंने उस कृतघ्न मित्र के प्रति एक पत्र लिखा जिसकी रचना श्लोकों में की गई। इस छोटी सी कविता में उस कृतघ्न मित्र की व्याजस्तुति भी है और स्फुट फट्कार भी है। यह कविता उनके कागज़ों में मिली हैं और उनकी अपनी कृतियों की सूची में भी इसका नाम और निर्माण काल दिए गए है। इसका प्रकाशन अभी नहीं हुआ है।

32. **आत्म परिचय**—यह भी एक छोटी सी कविता है जिसमें पूज्यपाद जी ने अपने जन्म का परिचय देकर पिछले चार जन्मों का उल्लेख किया हैं। तदनुसार पिछले चौथे जन्म में वे एक विद्याधर थे और किसी देवलोक में रहते थे। उनके कहे अनुसार वे वहां भी एक साधु ही थे। कुछ अन्य विद्याधरो को उनके प्रति ईर्ष्या हो गई और उनके चरित्र पर झूठा लाञ्छन लगाते हुए उनके गुरु के मन में क्रोध का भाव उद्बुद्ध किया। पूज्यपाद जी निरपराध थे अत: उन्होंने गुरु जी की डांट डपट को सहन नहीं किया। इस झगड़े में अनुशासन हीनता की बातें हुई जिनसे गुरु जी का क्रोध बढ़ गया और उन्होंने इन्हें शाप दे दिया। उसके फल स्वरूप चार बार इस मर्त्य लोक में जन्म लेना पड़ा। परन्तु इस चौथे

जन्म में भगवान् दुर्वासा ने अनुग्रह करके उत्कृष्टतर शाम्भवयोग की दीक्षा दे दी जिसके अभ्यास से वे ऐसी स्थिति में पहुंचे जहां से ऊर्ध्व लोकों की ओर सङ्क्रमण करना है और इस मर्त्यलोक में पुनः जन्म लेना नहीं है। ऐसा संकेत भी इस आत्म परिचय में दिया गया है। इस कविता का प्रकाशन अभी नहीं हुआ है। इसके निर्माण काल का विर्देश उन्होंने नहीं किया है। नहीं यह लिखा है कि इसका निर्माण उन्होंने कहां किया।

9

अन्य काव्य

(क) **अलभ्य काव्य**—पूज्यपाद जी ने अपनी कृतियों की सूची में कुछ ऐसे काव्यों का नामोल्लेख किया है जो अभी तक कहीं नही मिले। वे काव्य ये है—

(1) **बालाम्बास्तवः**—यह पूज्यपाद जी की इष्ट देवी बाला त्रिपुरा का स्त्रोत्र था जिसे उनके लिखे अनुसार सोलन के महेश वकील ने खो डाला। इसका निर्माण सन् 1929 में हुआ था।

(2) **श्री कृष्ण गीत दशकम्**—इस स्त्रोत्र को भी महेश वकील ने ही खो डाला। इसका निर्माण भी 1929 ई० में ही हुआ था।

(3) **वैद्यान् प्रति**—इस कविता के विषय में कोई पता नहीं चला कि कहां है। पूज्यपाद जी के ग्रन्थों की सूची में इसका नाम है। तदनुसार इसका निर्माण सन् 1971 ई० में हुआ था।

(4) **सूक्ति लहरी**—इस का परिचय पीछे दिया गया है।

(ख) **असम्पादित श्लोकसंग्रह**—पूज्यपाद जी एक की डायरी में 53 श्लोकों का एक संग्रह मिला जिन्हें सूक्तियों में गिना जा सकता है। संग्रह अस्त व्यस्त क्रम में है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे समुचित क्रम में लाकरउ सका सम्पादन भी किया गया हो। हो सकता है कि उपरोक्त "सूक्ति लहरी" इन्ही श्लोकों का संग्रह हो।

(ग) **प्रशस्तियाँ**—पूज्यपाद जी विवाह आदि उत्सवों पर, सम्मेलनों तथा सांस्कृतिक संगोष्ठियों पर और अन्य ऐसे अवसरों पर श्लोक रचना किया करते थे। मान्य महानुभावों का गुणगान करते हुए प्रशस्तियाँ भी लिखा करते थे। महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज जी की आयु के उनासी वर्ष पूरे होने पर उनके अस्सीवें जन्म दिवस पर वाराणसी में सन् 1967 ई० में एक उत्सव मना गया था। उस अवसर पर पूज्यपाद जी द्वारा संस्कृत श्लोकों में लिखी हुई एक प्रशस्ति मिल रही है। जो अतीव सुन्दर है। इस प्रशस्ति को उसी उत्सव पर प्रकाशित किया गया था।

(घ) **गज़ल**—पूज्यपाद आचार्य महोदय गज़ल भी लिखा करते थे। उनके लिखे लगभग एक सौ गज़लें सोलन में महेश वकील के पास थे जिन्हें उसने खो डाला।

(ङ) **फुटकर श्लोक**—पूज्यपाद जी के द्वारा निर्मित फुटकर श्लोक कई एक शिष्यों के पास बिद्यमान हैं। कुछ ऐसे श्लोक उनके कागज़ों में भी मिल रहे हैं। कुछ श्री स्वाध्याय में भी छपते रहे उसके अंकों से उनका संग्रह किया जा सकता है।

10

हिन्दी लेख

(क) **जीवन के संस्मरण**—पूज्यपाद आचार्य श्री जी ने अपने जीवन के कई एक मर्मस्पर्शी संस्मणस्वयं लिखकर श्री स्वाध्याय में प्रकाशित कराये थे। उन लेखों का पुनः प्रकाशन जयपुर से "श्री अमृतवाग्भवार्य सांस्कृतिक शिक्षा और शोध संस्थान" द्वारा सन् 1983 ई. में प्रकाशित "परम पूज्य बाबा महाराज" नामक पुस्तक में हुआ।

(ख) **धर्म, अर्थ आदि विषयों पर**—पूज्यपाद जी श्री स्वाध्याय में धर्म, अर्थ, इतिहास आदि विषयों पर भी समय-समय पर अपने लेख प्रकाशित करवाते रहे। उन लेखों में से बहुतों का पुन: प्रकाशन भी जयपुर से ही सन् 1984 ई. में हुआ। वह प्रकाशन भी उपरोक्त संस्थान की ओर से किया गया।

(ग) **वस्तुस्थिति क्या है**—इस शीर्षक से श्री स्वाध्याय में पूज्यपाद जी की एक लेख माला प्रकाशित हुई थी। उन लेखों का संग्रह करके और आवश्यकता के अनुसार उनका स्पष्टी करण कहते हुए "श्री पीठ" नाम

के सैद्ध दर्शन शोध-संस्थान" की ओर से सन् 1984 में उनको पुनः प्रकाशित कर दिया गया। इस लेख माला को पुस्तिका के आकार में "वस्तु-स्थिति-प्रकाश" इस शीर्षक से प्रकाशित करते हुए इसकी बन्धाई श्री परमशिव स्तोत्र के साथ एक ही जिल्द में कराई गई।

11

हिन्दी कहानियां

श्री स्वाध्याय में पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के द्वारा लिखी गई तथा सच्ची घटनाओं का वर्णन करने वाली चार कहानियां भी समय-समय पर प्रकाशित हुई थीं ।

1. **सुदृढ़ शरीर**—पूज्यपाद जी को विन्ध्याचल में भगवती अष्ट-भुजा के समीप एक ऐसे बंगाली महात्मा के दर्शन हुए जो प्राय: अहोरात्र ही कृष्ण-भक्ति में मस्त रहा करते थे तथा जिनका शरीर वृद्धावस्था में भी खूब हृष्ट, पुष्ट और बलशाली था। श्री पूज्यपाद जी उनसे बहुत प्रभावित हुए। महात्मा की जीवन-गाथा जो उन्होंने वहां के लोगों से सुनी उसको लिखकर उन्होंने श्री स्वाध्याय में प्रकाशित करवा दिया। तदनुसार महात्मा जी पहले एक जज थे जिनकी अदालत में एक गरीब ब्राह्मण के मुकद्दमें में स्वयं भगवान् कृष्ण एक देहाती के रूप में प्रकट होकर आए और ब्राह्मण के पक्ष में साक्षी देकर जल्दी ही अदृश्य हो गए। ब्राह्मण को अदालत ने निरपराध घोषित किया। जज साहिब अतीव प्रभावित हो गए। रात के समय घर से निकल कर अदृश्य हो गए। अनेकों वर्षों के पश्चात् उनके पुत्रों और पत्नी ने अष्ट-भुजा के निकट ठहरे हुए साधु के रूप में पाया।

2. विचित्र विधान—यह पटना के एक ब्राह्मण की सच्ची कहानी है। ब्राह्मण ने मरणासन्न अवस्था में प्रतिज्ञा की कि यदि स्वस्थ हो जाऊं तो शेष जीवन भगवान् को अर्पण कर दूंगा। दैवी माया से वह स्वस्थ हो गया और सन्यासी बनकर ऋषिकेश आया। वहीं बद्री नारायण की यात्रा को चला। परन्तु बीमारी के कारण आई कमजोरी से साधुओं के साथ चल नहीं सका। बहुत थककर बन में रात को एक चट्टान पर चढ़कर लेट गया। नीन्द तो आई नहीं। भगवान् ने कृपा करके रात को चमकने वाली एक दिव्य औषधि के दर्शन करा दिये। उस औषधि के पत्तों को पेट भरकर खाया और उसी चट्टान पर सो गया। दूसरे दिन काफी देर से जब जाग पड़ा तो उसने अपने आप को उतना बलशाली पाया जितना वह बीमारी से पहले था। फिर न उसे भूख ने सताया न प्यास ने। कई दिन वहीं ठहरा। परन्तु औषधि ने पुनः दर्शन नहीं दिए। इस कहानी को जैसे उस सन्यासी ने सुनाया। वैसे ही पूज्यपाद जी ने उसे लिखा और श्री स्वाध्याय में प्रकाशित करवा दिया।

3. प्रमाद यह एक युवा ब्रह्मचारी की है। वह असम में परशुराम कुण्ड की यात्रा को साधुओं के संग चल पड़ा मार्ग में बीमार हो गया। यात्रा अधिक देर रुकी नहीं। एक-एक करके सब आगे चल पड़े। अभी पांच दिन चलना था। ब्रह्मचारी को रात के समय एक महात्मा ने दर्शन दिए। उसको रोग से मुक्त कर दिया। और वहीं रुकने की सलाह दी। ब्रह्मचारी यात्रा के लिए बहुत उत्सुक था। महात्मा ने उसे आदेश दिया कि वापसी पर अकेला आजाना और पुनः मिलना (2) मेरी बात किसी से नहीं कहना। ऐसा आदेश देकर उसे अपने योग बल से दूसरे ही दिन परशुराम कुण्ड पहुंचा दिया। साधुओं की भीड़ चार दिन बाद वहां पहुंची। परिचित साधु उसे बहुत पूछते रहे कि वह कुण्ड पर कैसे पहुंचा। उसने पहले तो किसी से कुछ कहा नहीं, परन्तु अन्त में एक स्नेही वृद्ध साधु को सारी बात बता ही दी।

बात फैल गई। यात्रा तब तक वापिस नहीं लौटी जब तक वह भी

साथ न चला। चौथे पांचवेदिन यात्रा उस बन में पहुंच गई। महात्मा की धूनी का अवशेष वहांअभी था (गुफा भी वैसी ही थी। परन्तु महात्मा दीखे ही नहीं ब्रह्मचारी उन्मत्त सा हो गया। यात्रा कुछ दिन रुकी। अन्त तो गत्वाएक-एककरके सभी चल दिए। ब्रह्मचारी अकेला ही वहीं रुका। भूखा प्यास कई दिन रोता रहा। अन्त तो गत्वा महात्मा ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि तूने बड़ा प्रमाद किया। अतः इस जन्म में अब तेरी आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो सकती है। अगले जन्म में अवश्य होगी। तब ब्रह्मचारी पुनः वस्ती में आ गया और तीर्थों के दर्शन करता हुना भगवद् भजन में आयु के दिन पूरे करता गया। ब्रह्चारी ने यह कहानी पूज्य पाद जी के एक मित्र को जैसे सुना दी, वैसे उन्होंने इसे श्री स्वाध्याय के लिए लिख दिया।

मल्ल युवा यह एक ब्राह्मण साधु की कहानी है। बालक पहलवानी करता था। हरियाणा के एक ग्राम में रहता था। वहां जाटों के एक पहलवान ने राजपूतों को दंगल की चुनौती दी। राजपूत इस ब्राह्मण बालक को अपने घर लेगए और दूध, घी आदि खूब खिलाते रहे। फिर वे दाल के साथ मांस भी उबाल लेते थे और इस तरह से उसे गुप्त रूप से मांस का रस भी खूब पिलाते रहे। क्योंकि वे इस बात के लिए उत्सुक थे कि ब्राह्मण युवा जाटों के पहलवान को परास्त करे। उस बेचारे को इस बात का कुछ पता नहीं लगने दिया गया तब तक जब तक दंगल हो गया और ब्रह्मणयुवा ने जाटों के बड़े पहलवान को पछाड़ दिया। उसके पश्चात बात छिपी नहीं रही। निकल गई। ब्राह्मण पहलवान के माता-पिता ने भी सुन ली। पिता ने क्रोध में आकर उसे डांट-उपट कर घर से निकाल दिया। मल्लयुवा राजपूतों की शरण में न जाकर भगवान् की शरण में आया। साधु बन गया और थोड़े से ही समय में आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी उन्नति कर गया।

युवा पहलवान ने अपनी कहानी जैसे पूज्य पाद जी को सुना दी वैसे ही वे उसे लिख लिख कर श्री स्वाध्याय को खण्डशः भेजते रहे।

कहानी के कुछ खण्ड पत्रिका में प्रकाशित होते रहे। इसी बीच में युग देवता ने श्री स्वाध्याय के मुख्य कार्यकर्ता की बुद्धि को बिगाड़ दिया। उसके फल स्वरूप पत्रिका का प्रकाशन बारह वर्ष के पश्चात बन्द हो गया और मल्ल युवा की कहानी का प्रकाशन आधूरा ही रह गया।

इन उपरोक्त मुख्य ग्रन्थों के अतिरिक्त पूज्य पाद श्री आचार्य महोदय न कई एक ग्रन्थों के प्रास्ताविक भाग लिखे। उनमें से धर्माचार्य की पश्चस्तवी का जो प्रास्ताविक श्री नगर से कश्मीर ग्रन्थावली से प्रकाशित सटीक संस्करण के प्रथम खण्ड के साथ प्रकाशित हुआ वह बहुत महत्त्व का है फिर उन्होंने कई एक टीका ग्रन्थ लिखे जिन में से दो का उल्लेखउन की कृतियों की सूची में मिल रहा हैं। वह है-कल्याण सौगन्धिक नाटक की टीका श्री कला और देवी मानसपूजा की संस्कृत टीका। ये टीकाएँ कहीं देखने में आई नहीं। उनके कागजों में उनके प्रपितामह के द्वारा रचित स्तोत्र की संस्कृत टीका के कुछ ही अंश मिलते है। स्तोत्र भी मिल नही रहा है।

वारणसी से सरस्वती भवन पुस्तकालय में शोध कार्य करते हुए उन्होंने कई एक ग्रन्थों का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया। उनमें से प्रमुख ग्रन्थ है वृत्तरत्ना कर की नारायणीय टीका और दूसरा है त्रिपुरा रहस्य का ज्ञान खण्ड।

हम लोगों को पूज्यपाद जी के उपरोक्त कृतियों से ही परिचय है। हो सकता है कि उन्हों ने और भी बहुत कुछ लिखा हो जो हमारी दृष्टि में या श्रुति में आया नहीं।

अनन्त 'श्री जी' का

निकट भविष्य में प्रकाशित होने वाला ग्रन्थ

श्री राष्ट्रालोक का
श्री राष्ट्र संजीवन संस्कृत भाष्य

(हिन्दी अनुवाद सहित)

राष्ट्रवादी ही आर्य है। आर्य ही शान्ति की स्थापना कर सकते हैं।

'भारत भारतीयों का है।'

स्वातंत्र्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। राष्ट्र हमारा पिता है, माता है, और आचार्य हैं। हम सदा उसके सेवक हैं। हमारा राष्ट्र हमें भोग और मोक्ष दोनों देता है।

हम सच्चे राष्ट्रिय हैं

अभारतीय भारत के अतिथि हो सकते हैं, राष्ट्रिय नहीं। हम सँक्रान्ति का सदा आदर करते हैं। हमें ऐसी शान्ति नहीं चाहिए जो राष्ट्र को परतन्त्र बनाये।

राष्ट्रिय राष्ट्र के पुत्र होते हैं, पति नहीं भारतीय अपने को हिन्दू मानने में गौरव का अनुभव करते हैं। भारतीय आदर्श के विपरीत क्रान्ति किंक्रान्ति है, संक्रान्ति नहीं। यदि आप इन भावों से स्नेह करते हैं तो यह ग्रन्थ अवश्य पढ़िये।

श्री राष्ट्रालोक परम पवित्र भारतीय आदर्श का एक जीवन शास्त्र है।

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री विद्या प्रकाशन
आर. पी. एस.-286,
मदनगीर, नई दिल्ली-62

श्री रत्नलाल अग्रवाल
प्रचार मन्त्री/कोषाध्यक्ष

श्री रत्नलाल अग्रवाल
स्टाफ क्वार्टर ए-I,
दिल्ली हाई कोर्ट शेरशाह रोड,
नई दिल्ली-3

शुद्धि–पत्र

पृष्ट सं.	अशुद्ध	शुद्ध
5	अन्धगेबाङ्गूलन्याय	अन्धगोलाङ्गूलन्याय
5	ब्रह्म	ब्रह्मा
5	सन्वाङ्म यही	सन्वाङ्मय ही
6	वैरवरी	बैरवरी
7	हदय	हृदय
8	प्रणीमात्र	प्राणीमात्र
10	निर्माण	निर्वाण
11	निर्माण	निर्वाण
11	श्रीमदमृतवाग्भावाचार्य	श्रीमद मृतवाग्भवाचार्य
22	प्रसङ्ग	प्रसङ्ग
24	स्कुट	स्फुट
25	वग	वर्ग
28	मनुष्याणं	मनुष्यणां
28	अनिष्ठ्ठा	अनिष्ठ्वा
29	अनुभाव	अनुभव
32	ग्रन्थों	ग्रन्थ
34	गह्य	गृह्य
34	होता	होती
34	संर्धन	संवर्धन
34	पाचवे	पांचवे
35	भाया	भार्या
35	सङ्क्रमण	सङ्क्रमण
35	हृदयम	हृदयम्
35	सङ्कल्पों	सङ्कल्पों
36	अपती	अपने
37	गंङा	गङ्गा
37	सौन्दर्भ	सौन्दर्य
38	स्तोत	स्तोत्र
45	पूज्यवाद	पूज्यपाद

महामहिम आचार्य श्रीमद् अमृत वाग्भव जी के प्रकाशित ग्रन्थ

संख्या	ग्रन्थ		मूल्य
1.	महानुभव शक्तिस्तोत्र	: संस्कृत-हिन्दी व्याख्या	1-00
2.	श्री परशुराम स्तोत्रम्	: हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद	2-00
3.	श्री विंशतिका शास्त्रम्	: संस्कृत-हिन्दी अनुवाद	5-75
4.	श्री सप्तपदी हृदयम्	: संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी अनुवाद	1-50
5,	श्री संजीवनी दर्शनम्	: संस्कृत-हिन्दी अंग्रेज़ी अनुवाद	1-50
6.	श्री संक्रान्ति पंचदशी	: हिन्दी गद्य-पद्य अनुवाद	1-00
7.	श्रीसिद्ध महामन्त्रमयी शिव प्रार्थना	: हिन्दी-अंग्रेज़ी अनुवाद)	अमूल्य

8. श्री मन्दाक्रान्तास्तोत्रम् : हिन्दो-व्याख्या 5-00

9. श्री आत्मविलास : सुन्दरी हिन्दी व्याख्या 20-00

10. श्री सिद्ध महारहस्यम् तथा दशिका दर्शनम् : हिन्दी टीका 10-00

11. श्री मद्-अमृतस्तोत्र संग्रह : हिन्दी टीका 3-00

12. श्री परम शिवस्तोत्रम् तथा वस्तुस्थिति-प्रकाश : हिन्दो व्याख्या 12-50

13. श्री मद्-अमृत सूक्ति पंचाशिका : संस्कृत व्याख्या 3-00

14. श्री राष्ट्रालोक : हिन्दी टीका 1-50

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री विद्या प्रकाशन
आर. पी. एस.-286,
मदनगरि, नई दिल्ली-62
श्री रत्नलाल अग्रवाल
प्रचार मन्त्री/कोषाध्यक्ष

श्री रत्नलाल अग्रवाल
स्टाफ क्वार्टर ए-I,
दिल्ली हाई कोर्ट, शेरशाह रोड,
नई दिल्ली-3